यज्ञमय जीवन

(जीवन जीने की कला)



सत्य प्रकाशन, मथुरा

CamScanner से स्कैन किया गया

॥ ओ३म् ॥

वेद सप्ताह के लिये प्रेरक वेद कथा--

यज्ञमय जीवन

अथवा

जीवन कला

★

प्रणेता :

आचार्य प्रेमभिक्षुः (एम० ए०)

साहित्य रत्न सिद्धान्त शास्त्री

[सम्पादक—'तपोभूमि']

प्रकाशक :

सत्य प्रकाशन

वृन्दावन मार्ग, मथुरा.

मूल्य 7—

द्वितीय बार] सं० २०४५ [मूल्य ५) रु० मात्र

CamScanner से स्कैन किया गया

प्रस्तावना—

वेद प्रभु की कल्याणी वाणी है उस परम करुणामयी मां का कोटिशः धन्यवाद है, जिसने सृष्टि सर्ग के आरम्भ में अपने अमृत पुत्र मानव के कल्याण के लिए पवित्रतम आत्माओं—अग्नि, वायु, आदित्य अंगिरा के अन्तर्हृदयों में अपने शांतिदायक वेदज्ञानका प्रकाशन किया जिसके पुण्य प्रकाश में जन्म-जन्मान्तर से भटक रहा, मानवात्मा जीवन के चरम लक्ष्य से परिचित होकर, विधि-निषेध या कर्त्तव्या-कर्त्तव्य का ज्ञान प्राप्त कर अकर्त्तव्य या अधर्म के त्याग और कर्तव्य व धर्म के सम्पादन द्वारा शाश्वत शान्ति (मोक्ष) को पा सकता है।

हम सब ऋणी हैं उस महान् आचार्य—ऋषिवर दयानन्द के जिसने स्वयं विष के प्याले पीकर हमें फिर से वेदामृत प्रदान किया जिसने वेद के पावन सूर्य पर छाई हुई मत-मतान्तरों की बदलियों को अपने तर्क तीरों से छिन्न-विच्छिन्न करके फिर से सम्पूर्ण धरित्री मुख्य रूप से भारत भूमि को वेदालोक से आलोकित किया, और प्रभु की अमृत वाणी वेद के सतत प्रचार-प्रसार के लिए आर्यसमाज जैसे पुनीत संगठन को जन्म दिया।

हम कृतज्ञ हैं उन वैदिक विद्वानों के जिन्होंने आर्यसमाज के विविध कार्य कलापों या सेवा-साधनाओं जैसे—भारत को स्वाधीनता दलितोद्धार, अनाथ-रक्षण, नारी समुद्धार, विविध सामाजिक कुरीतियों का उन्मूलन-गोरक्षा, हिन्दी प्रचार, शुद्धि-संगठन आदि के बीच भी परम धर्म मानव-निर्माण के मूलाधार वेद प्रचार को भुलाया नहीं उन वैदिक विद्वानों की सूची बड़ी लम्बी है जिन्होंने लेखनी और वाणी द्वारा वेद प्रचार को गति दी। उनमें से जिन्होंने मुख्य रूप से वेद भाष्य और वेद व्याख्या ग्रन्थ लिखे उनमें से हैं स्वनाम धन्य चतुर्वेद भाष्यकार पं० जयदेव जी विद्यालङ्कार, सामवेद भाष्यकार पं० तुलसीरामजी स्वामी, अथर्ववेद भाष्यकार पं० क्षेमकरणदास जी

CamScanner से स्कैन किया गया

त्रिवेदी, पं० शिवशंकरजी काव्यतीर्थ श्रीपाद पं० दामोदरजी सातव-लेकर, पं० चमूपतिजी एम. ए. पं० अभयदेव जी विद्यालंकार स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज, स्वामी वेदानन्द जी 'दयानन्द तीर्थ' स्वामी विद्यानन्दजी 'विदेह' पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय, पं० हरिश्चन्द्र जी विद्यालंकार, आचार्य प्रियव्रत जी वेदवाचस्पति, पं० हरिशरण जी सिद्धान्तालंकार, स्वामी धर्मानन्दजी वि. मा., आचार्य वीरेन्द्र मुनिजी आचार्य कृष्णजी, पं० बिहारीलालजी शास्त्री, स्वामी जगदीश्वरानन्द पं० सुरेश चन्द्र वेदालंकार स्वामी अच्युतानन्द पं० जगत्कुमार शास्त्री पं० रामप्रसाद, डा० रामनाथ जी वेदालङ्कार आदि इन सभी के पुण्य पुरुषार्थ के लिए मां मानवता निश्चय ही चिर ऋणी रहेगी।

आर्यसमाजों द्वारा श्रावणी से जन्माष्टमी तक 'वेद कथा सप्ताह' के आयोजनों में सुयोग्य विद्वानों, आर्योपदेशकों एवं भजनोपदेशकों द्वारा भी वेद प्रचार कार्य को बड़ा बल मिला। व्याख्यानों की अपेक्षा कथायें अधिक सरस और हृदयग्राही होती हैं और हमारे देश के कथा-कीर्तन प्रधान वातावरण में वेद कथायें मिथ्या माहात्म्य युक्त सत्य नारायणकथा, भागवतकथा का अधिक सुविधा से स्थान ले सकती हैं, इधर कुछ समय से आर्यजनता ने भी इस तथ्य को अनुभव किया है।

आर्यसमाजों के अतिरिक्त पिछले कुछ समय से परिवारों में भी यज्ञ और वेद कथाओं का श्रद्धोपेत क्रम चलता है। हमारे वैदिक परिवार निर्माण के शुभ्र अभियान से भी ईश कृपा से पारिवारिक और सामाजिक स्तर पर वेद कथाओं को बल मिला है। हमारे ऐसे अकिञ्चन को भी वेद कथा के लिए भारत में अनेक बड़े २ नगरों से लेकर गाँवों तक जाना पड़ा, ईश कृपा से सर्वत्र ही सफलता मिली।

इधर वानप्रस्थ-दीक्षा के पश्चात् हमने यात्रायें बहुत कम करने और अधिक समय स्वाध्याय साधना तथा 'तपोभूमि' के माध्यम से लेखनी द्वारा सेवा करने में लगाने का विचार बनाया। पर पिछले एक वर्ष में यज्ञों, वेदकथाओं व उत्सवों के निमन्त्रणों की और भी

CamScanner से स्कैन किया गया

संख्या बढ़ गई, मेरे लिए उन सबको स्वीकार करना सम्भव नहीं था अपने अत्यन्त आत्मीय जनों से भी 'क्षमा-याचना' करनी पड़ी, बिहार बंगाल, उड़ीसा, पंजाब, महाराष्ट्र और हिमाचल प्रदेश के तो अधिकांश निमन्त्रण अस्वीकृत करने पड़े। इससे जहाँ खेद हुआ वहाँ एक विचार भी उत्पन्न हुआ कि सात दिनों के लिये किसी एक विषय को लेकर 'वेद कथा' लिख दी जावे, जिससे अनेकों आर्यसमाजों और परिवारों में किन्हीं वैदिक विद्वान् के न पहुंचने पर इस अंक की सहायता से इस अभाव की पूर्ति हो सके। प्रस्तुत वेद कथाङ्क इसी विचार का प्रतिफल है इसका विषय है जीवन कला 'यज्ञमय जीवन'

जनसमाज में वेदभक्ति जगाने की दृष्टि से मैं अपने व्याख्यानों का आधार भी किसी वेद मन्त्र को रखता रहा हूं। इस सम्बन्ध में मैं स्व० स्वामी विद्यानन्द जी 'विदेह' का विशेष रूप से ऋणी हूं। स्वामी वेदानन्दजी, पं. गंगाप्रसादजी उपाध्याय, पं० चमूपतिजी की वेद व्याख्याओं से भी मैंने पर्याप्त सीखा है, दार्शनिक चिन्तन के लिए मैं स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज का अतीव ऋणी हूं। उक्त सभी के प्रति मैं श्रद्धानत हूं। वस्तुतः इसमें मेरा अपना कुछ नहीं है। विद्वानों के चरणों में बैठकर उनसे प्राप्त विचारों और वेदमाता के स्तवन से जो प्रेरणायें मिलीं, उन्हीं को बड़ी दौड़-धूप के बीच लेखबद्ध करने का यत्न किया है। यदि वेदभक्त जनता ने इसे अपनाया तो पवित्र वेद मन्त्रों के आधार पर 'शुद्ध भागवत कथा' 'धर्म कथा' भी लिखने का विचार है। अन्त में उस मंगलमय भगवान् के चरणों में उसी की वस्तु भेट करते हुए विनय है—

मेरा मुझको कुछ नहीं, जो कुछ है सो तोर।
तेरा तुझको सौंपते, क्या लागे है मोर॥

— 'प्रेमभिक्षुः' वानप्रस्थ (आचार्य)

CamScanner से स्कैन किया गया

भूलोक का गौरव प्रकृति का पुण्य लीला-स्थल कहाँ ?
फैला मनोहर गिरि हिमालय और गङ्गाजल जहाँ।
ससार में सबसे अधिक किस देश का उत्कर्ष है ?
उसका कि जो ऋषि भूमि है, वह कौन ? भारतवर्ष है।

हाँ, तो मित्रो और माताओ ! हमारे सौभाग्य की परिधि उस समय और भी विस्तृत हो जाती है जब हम विचारते हैं कि मानव का चोला पाने, भारत माता जैसी मातृभूमि की गोद पाने के साथ ही हमें इस पवित्र वैदिक सत्संग में भाग लेने का सुयोग प्राप्त हुआ है और कि हमें आचार्य के रूप मे युग पुरुष महान् क्रान्तिदर्शी दयानन्द जैसा अपूर्व आचार्य प्राप्त हुआ है जिसने स्वयं विष के प्याले पीकर हमें फिर से वेदामृत का पान कराया और युगों-युगों के पश्चात् फिर यह व्यवस्था दी—(आप सभी कृपया, हमारे साथ दुहरायें) **'वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ना और सुनना-सुनाना सब आर्यों (श्रेष्ठ मानवों) का परम धर्म है।"**

मित्रो और माताओ ! रामायण का पढ़ना धर्म है, महाभारत और गीता का पढ़ना धर्म है, सत्यार्थप्रकाश और ऋग्वेददादिभाष्यभूमिका का पढ़ना धर्म है, किन्तु वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना सुनाना परम धर्म है। तो आयें, हम सभी सव प्रथम उस परम कारुणिक देवाधिदेव प्रियतम ओम् का अपने हृदय की सम्पूर्ण गहराइयों के साथ धन्यवाद करें, जिसकी असोम कृपा से हमें इस परम धर्म के पालन का सुयोग प्राप्त हुआ है। परम पवित्र वेदों का ही यह ऐसा महत्व क्यों है ? आयें, आज की कथा में हम सब मिलकर इसी विषय पर विचार करेंगे।

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्ताम्।

मित्रो ! इस पवित्र मन्त्र का चिन्तन हमें बताता है कि वेद माता है। जिस प्रकार हर अच्छी माँ अपने पुत्र-पुत्रियों को कुपथ को त्यागने और सुपथ में प्रवृत्त होने का उपदेश करती है वैसे ही

CamScanner से स्कैन किया गया

हम सबकी साक्षी माँ—हम सब गाते हैं न ? 'त्वमेव माता च पिता त्वमेव' तो उस विश्वधात्री माँ ने अपने अमृत पुत्र मानव के सर्वविध कल्याण के लिये—उसे दुरितों को त्यागने और भद्र को—सुपथ को ग्रहण करने की प्रेरणा करते हुए सृष्टि सर्ग के आरम्भ में अपनी कल्याणी वाणी—वेद माता का प्रकाशन किया।

पवित्र वेद के अन्य मन्त्रों से भी इसी तथ्य की सम्पुष्टि होती हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद तीनों में एक-एक 'पुरुष सूक्त' आता हैं। सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन करते हुए इन सूक्तों में कहा गया है—

तस्माद् यज्ञात् सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दाँसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत॥

—ऋ० १०।९०।९॥, यजु० ३१।७॥, अथर्व० १९।६।१३॥

अर्थात्—"सबके पूजनीय उस परमात्मा से ऋग्वेद उत्पन्न हुआ, सामवेद उत्पन्न हुआ, उसीसे छन्द अर्थात् अथर्ववेद और उसीसे यजुर्वेद उत्पन्न हुआ।"

पवित्र अथर्ववेद के काण्ड १०, सूक्त ७, मन्त्र २० में वेदों की उत्पत्ति परमात्मा से बताने के लिये बड़ा सुन्दर अलंकार बाँधा गया है—

यस्माद्चो अपातक्षन् यजुर्यस्माद पाकलन्।
सामानि यस्य लोमान्यथर्वाङ्गिरसो मुखं स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः॥ अथर्व० १०।७।२०।

अर्थात्—"जिससे ऋग्वेद के मन्त्र छीलकर निकाले गये हैं, यजुर्वेद जिससे रगड़कर निकाला गया है, सामवेद के मन्त्र जिसके रोमों के समान हैं और अथर्ववेद जिसका सिर या मुख है, उस स्कम्भ (स्तम्भ) को बताओ कि वह कौन सा है ? मन्त्र में 'कौन' के लिये "कतमः" पद का प्रयोग हुआ है। "कतमः" का अर्थ "सबसे अधिक आनन्दवान्" भी होता है। इस प्रकार इस प्रश्न में ही उत्तर भी आ गया कि वह स्कम्भ (स्तम्भ—विश्वाधार) आनन्द स्वरूप सर्वाधार

CamScanner से स्कैन किया गया

पहला दिन

वेद महिमा

ओ३म् भूर्भुवः स्वः ॥ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो योनः प्रचोदयात् । यजु० ३६ । ३ ॥

गायत्री संकीर्तन

प्राण प्रदाता, संकट त्राता, हे सुखदाता ! ओम् ओम् ।
सविता, माता-पिता वरेण्यम्, भगवन् भ्राता ओम् ओम् ॥
तेरा शुद्ध स्वरूप करें हम, धारण धाता ! ओम् ओम् ।
प्रज्ञा प्रेरित कर सुकर्म में, विश्व विधाता ! ओम् ओम् ॥

ओं स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम् । आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्म वर्चसम् । मह्यं दत्वा व्रजत ब्रह्मलोकम् ॥ अथर्व० १९।७१।१।

मान्या माताओ, पुत्रियो और उपस्थित सत्सङ्ग प्रेमी बन्धुओ ! हम सौभाग्यशाली हैं कि हमने यह दिव्य मानव शरीर प्राप्त किया है, हम और भी अधिक साभाग्यशाली हैं इन अर्थों में कि हमने धरती के सर्वोत्तम भू-भाग—गौतम, कपिल, कणाद, पतञ्जलि, व्यास, जैमिनि और पाणिनि जैसे ऋषि-मुनियों की जन्मदात्री, भगवान् राम और योगेश्वर कृष्ण जैसे महनीय व्यक्तित्वों और सीता-सावित्री एवं गार्गी-मैत्रेयी जैसी विदुषी देवियों को जन्म देने का गौरव जिसे प्राप्त है उस पुण्यमयी, महिमामयी गौरवमयी भारत भूमि में जन्म धारण किया है। राष्ट्रकवि गुप्त जी ने कैसे भावनामय शब्दों में मातृभूमि भारत के इस गौरव का स्मरण किया है—

CamScanner से स्कैन किया गया

परब्रह्म ही है। इस प्रकार सुन्दर अलंकार के माध्यम से वेद ने स्पष्ट कहा है कि चारों वेद परमात्मा से उत्पन्न हुए हैं।

ऋग्वेद के दसवें मण्डल का ७१ वाँ सूक्त वेद विषयक् ही है। इस सूक्त को आपने पढ़ा होगा। श्रावणी पर्व की विशेष आहुतियाँ इन से दी जाती हैं। इस सूक्त के प्रथम और तृतीय मन्त्र हैं—

बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं यत्प्रैरत नामधेयं दधानाः।
यदेषां श्रेष्ठं यदरिप्रमासीत् प्रेणा तदेषां निहितं गुहाविः ॥१
यज्ञेन वाचः पदवीयमायन् तामन्वविन्दन् ऋषिषु प्रविष्टाम्।
तामाभृत्या व्यदधुः पुरुत्रा तां सप्त रेभा अभि सं नवन्ते ॥

इन मन्त्रों में स्पष्ट कहा है कि सृष्टि के आरम्भ में परमात्मा ने सर्वश्रेष्ठ और सर्व पवित्र चार आदिम ऋषियों—अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा—को वेद का ज्ञान दिया। उन ऋषियों ने अन्य मनुष्यों को वेद की भाषा और ज्ञान सिखाया। वेद के शब्दों से ही ऋषियों और मनुष्यों ने संसार के विभिन्न पदार्थों के नाम रखे।

मित्रो और माताओ! वेदों की महिमा में इस अन्तर्साक्ष्य के अतिरिक्त सभी ब्राह्मण और उपनिषद्, दर्शन और स्मृतियां, पुराण-रामायण और महाभारत भी वेदों के इस परम महत्व की ऊँचे स्वर से घोषणा कर रहे हैं।

वेद और शतपथ ब्राह्मण

ब्राह्मण-साहित्य के सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ शतपथ ब्राह्मण को वेदों के सम्बन्ध में राय है कि "ऋग्वेद आदि चारों वेद परमात्मा ने इस प्रकार अनायास उत्पन्न कर दिये है जिस प्रकार कि श्वास-प्रश्वास की क्रिया अनायास होती रहती है*।" वेदों का ईश्वर-कर्तृत्व बताने के लिये शतपथ-ब्राह्मणकार रूपक से वेदों को ईश्वर का निःश्वसित अर्थात् श्वास ही कह देता है। वेदों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में शतपथ-ब्राह्मण के कर्त्ता महर्षि याज्ञवल्क्य एक दूसरे स्थान पर लिखते हैं—

---

* एवं अरे अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितम्।
एतद् यद् ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः श० ११।५।४।१०

CamScanner से स्कैन किया गया

"उस प्रजापति परमात्मा ने श्रम किया, तप किया, और इसने त्रयी-विद्या रूप ब्रह्म को—वेदों को सबसे प्रथम उत्पन्न किया[१]।" इस प्रकार शतपथ-ब्राह्मणकार को सम्मति में वेद सृष्टि के आरम्भ में मनुष्यों को परमात्मा द्वारा सबसे पहले दिया गया ज्ञान है।

वेद और तैत्तिरीय ब्राह्मण

तैत्तिरीय ब्राह्मण में एक कथा आती है कि "भरद्वाज ऋषि ने तीन जन्मों में आजन्म ब्रह्मचर्य धारण करके वेदों का ही अध्ययन किया। जब वह वृद्ध होकर मृत्यु-शय्या पर पड़ा था तब इन्द्र ने उससे कहा कि अगर मैं चौथा जन्म और दे दूं तो तुम क्या करोगे? भरद्वाज ने उत्तर दिया कि उस जीवन में भी मैं आजन्म ब्रह्मचारी रहकर वेदों का हो स्वाध्याय करूंगा। इस पर इन्द्र ने उसे तीन बड़े-बड़े अज्ञात पहाड़ से दिखाये और हर एक से एक-एक मुट्ठी लेकर कहा—भरद्वाज ! आओ, देखो, ये वेद हैं। ये अनन्त हैं। तू तीनों जन्मों में भी इतना थोड़ा सा हो पढ़ पाया है। अधिकांश तो तेरे लिये अज्ञात ही पड़ा है। आओ इसे जानो। इसमें सब विद्यायें हैं। ....ऋग्वेद और सामवेद (आदि चारों वेद) सरस्वती के झरने हैं[२]"

वेद और उपनिषद्

उपनिषदों की सम्मति में वेदों का अन्तिम प्रयोजन अध्यात्म-विद्या का उपदेश करके ब्रह्म का साक्षात्कार करना है। कठोपनिषद् का प्रसिद्ध वाक्य है कि "सारे वेद प्राप्त करने योग्य जिस ब्रह्म का वर्णन करते हैं, जिसे प्राप्त करने के लिए सब प्रकार की तपस्यायें की जाती हैं और जिसे प्राप्त करने की इच्छा वाले अभ्यासी लोग ब्रह्मचर्य का सेवन करते हैं, उसे प्राप्त करने योग्य ओम्-पद वाच्य ब्रह्म का मैं

---

१. स (प्रजापतिः) श्रान्तस्तेपानो ब्रह्मैव प्रथममसृजत त्रयीमेव विद्याम् श० ६।१।१।८॥

२. ऋक्सामे वै सारस्वतावुत्सौ। तै० १।४।४।६॥

CamScanner से स्कैन किया गया

संक्षेप में प्रवचन करता हूं ❀ ।" उपनिषद् ने यहाँ स्पष्ट कहा है कि वेद ब्रह्म का उपदेश करने वाले ग्रन्थ हैं। इस प्रकार उपनिषदों के अनुसार वेदों में ऊंचा आध्यात्मिक ज्ञान भरा हुआ है। और स्वयं उपनिषदें भी वेदों के आध्यात्मिक ज्ञान का ऋषियों द्वारा अपनी भाषा में व्याख्यान मात्र हैं।

वेद और मनु

मानव धर्म शास्त्र प्रणेता मनु महाराज कहते हैं—

अग्नि-वायु-रविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम् ।
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थं ऋग्-यजुः साम-लक्षणम् ॥ मनु. १।२३॥

"सनतान वेदों को परत्मा ने सृष्टि के आरम्भ में अग्नि आदि ऋषियों पर प्रकट किया ताकि सब प्रकार के यज्ञों (व्यवहारों) की सिद्धि हो।" भगवान् वेदों की सर्व-विद्या-प्रतिपादकता का उल्लेख करते हुए कहते हैं :—

सर्वेषां तु नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक् ।
वेद-शब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे ॥मनुः १।२१॥

"परमात्मा ने सृष्टि के आरम्भ में वेदों के शब्दों से ही सब चोजों और प्राणियों के नाम और कर्म तथा लौकिक व्यवस्थाओं की रचना की है।"

इतना ही नहीं, मनु महाराज को सम्मति है कि धर्म के शुद्ध और वास्तविक स्परूप को वेदों के अध्ययन से ही जाना जा सकता है। वे कहते हैं—सम्पूर्ण वेद धर्म के मूल अर्थात् प्रमाण हैं।× 'जो लोग धर्म को जानना चाहते हैं उनके लिए वेद परम प्रमाण है।

---

१. सर्वेवेदा यत्पदमा मनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति,
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवोम्योमित्येतद्'

२. वेदोऽखिलो धर्म मूलम्। मनु० २। ६॥

CamScanner से स्कैन किया गया

इतना ही नहीं मनु महाराज ने जहाँ धर्म की चार कसौटियाँ-वेद स्मृति सदाचार आदि बताई हैं वहां सबसे प्रधान और प्रामाणिक कसौटी वेद को बताया है।

वेद और वेदान्तदर्शन तथा शङ्कराचार्य

'शास्त्र योनित्वात्' वेदान्त दर्शन के इस सूत्र पर भाष्य करते हुए उद्भट प्रतिभाशाली महान् दार्शनिक आचार्य शङ्कर लिखते हैं :

"ऋग्वेदादि वेद-शास्त्र अनेक विद्याओं से युक्त हैं। दीपक की भाँति सब पदार्थों का बोध कराने वाले हैं। इनमें इतना अधिक ज्ञान भरा हुआ है कि ये सर्वज्ञ जैसे दीखते हैं। इनका कारण ब्रह्म ही हो सकता है। ऐसे सर्वज्ञता के लक्षण से युक्त ऋग्वेदादि शास्त्र की उत्पत्ति सर्वज्ञ से भिन्न किसी अन्य से नहीं हो सकती। हम संसार में देखते हैं कि पाणिनि आदि ग्रन्थकारों के ग्रन्थों में जितना ज्ञान होता है उससे कहीं अधिक ज्ञान उनके मस्तक में रहता है। तभी वे वैसे ग्रन्थ लिख पाते हैं। ऋग्वेदादि का कहना ही क्या ? वे तो सब प्रकार के ज्ञान के समुद्र हैं। उनकी उत्पत्ति तो सर्वज्ञ से ही हो सकती है। अतः सवज्ञ ब्रह्म ही ऋग्वेदादि का कारण है। पुरुष के श्वास-प्रश्वास की तरह अनायास ही ब्रह्म से वेदों की उत्पति हुई।"

वेद और मीमांसा दर्शन

मीमांसा-दर्शन के कर्त्ता महर्षि जैमिनि बहुत ऊँची कोटि के तार्किक थे। इन महर्षि जैमिनि ने भी अपने इस मीमांसा-दर्शन में वेद की महिमा को मुक्त-कण्ठ से स्वीकार किया है। वे वेद को पौरुषेय नहीं मानते, उनकी सम्मति में वेद ज्ञान से भरी हुई ऐसी ऊँची रचना है कि वह किसी मनुष्य का बनाया हुआ हो हो नहीं सकता। वे वेद को नित्य और अपौरुषेय मानते हैं। उनकी सम्मति में वेद के स्वाध्याय से ही धर्म का असली बोध हो सकता है। वेद के स्वाध्याय के अतिरिक्त और किसी तरह धर्म का ज्ञान नहीं हो सकता। उनके

CamScanner से स्कैन किया गया

शब्दों में **वेद की प्रेरणा**, अर्थात् वेद की आज्ञा, जो अर्थ (कर्त्तव्य) बताती है, वही धर्म है।❀

वेद और वैशेषिक दर्शन

वैशेषिक दर्शन भी वेद को ईश्वर की रचना मानता है। **'तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम्'** (वै० १। १। ३) अर्थात् "ईश्वर का वचन होने के कारण वेद का प्रामाण्य है।

वेद और योग दर्शन

महर्षि पतञ्जलि ने योग-दर्शन में परमात्मा का वर्णन करते हुए उसे सर्वज्ञ माना है और कहा है कि परमात्मा में निरतिशय ज्ञान है, उसमें इतना ज्ञान है कि वहाँ ज्ञान की हद हो गई है, उससे अधिक ज्ञान और किसी में हो ही नहीं सकता। इस प्रकार परमात्मा को निरतिशय ज्ञान वाला सर्वज्ञ× सिद्ध करके महर्षि पतञ्जलि आगे कहते हैं कि 'वह परमात्मा हमारे पूर्वज गुरुओं का भी गुरु है।'× जगत् में ज्ञान की धारा उसी परम गुरु से प्रवाहित हुई है।

इसी प्रकार **साँख्य दर्शन** की भी धारणा है—**"न पौरुषे यत्वं तत्कर्तुः पुरुषस्याभावात्"** (साँख्य ५।४६) अर्थात् वेद पौरुषेय नहीं हैं, क्योंकि उसका बनाने वाला कोई पुरुष नहीं हो सकता।" अतः नित्य और अपौरुषेय वेद के कर्त्ता नित्य और सर्वज्ञान निधि भगवान् ही हो सकते हैं।

संस्कृत भाषा के कोषकार भी धर्म का यही अर्थ करते रहे हैं कि वेद की विधि अर्थात् आज्ञा का नाम ही धर्म है। उदाहरण के लिए संस्कृत के सुप्रसिद्ध कोष अमरकोष में धर्म का यही अर्थ किया गया है—**"श्रुतिः स्त्री वेद आम्नायस्त्री, धर्मस्तु तद्विधिः।"**

(अमरकोष, का० १। व० ५। श्लो० ३)

❀ **चोदनालक्षणाऽर्थो धर्मः। मीमांसा दर्शन १। १। २॥**

× **तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम्। यो० १। २५॥**

स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदाद्। यो० १।२६॥

CamScanner से स्कैन किया गया

वेद और व्याकरण महाभाष्य

अलौकिक प्रतिभा के धनी महर्षि पतञ्जलि ने अपने महाभाष्य में वेद की महिमा गाते हुए लिखा है—"एकः शब्दः सम्यग् ज्ञातः सुप्रयुक्तः स्वर्ग लोके काम-धुक् भवति" अर्थात् वेद की तो यह महिमा है कि यदि कोई 'वेद के किसी एक मन्त्र के एक ही शब्द को भी ठीक प्रकार समझ ले, उसके उपदेश के अनुसार अपना आचरण बना ले तो उसका जीवन स्वर्ग का जीवन बन सकता है। उसकी सब कामनायें पूरी हो सकती हैं।"

मित्रो माताओ ! ब्राह्मण ग्रन्थ, दर्शन और उपनिषदों द्वारा परम पवित्र वेदों के महत्व प्रतिपादन के पश्चात् अब हम गीता, महाभारत और रामायण की दृष्टि वे वेद माता की महिमा बताना चाहेंगे। गीता की सम्मति में—'कर्म ब्रह्मोद्भवं बिद्धि ब्रह्माक्षर समुद्भवम्" (गीता ३।१५) कर्तव्य कर्मों का बोध वेद के द्वारा होता है। वह वेद अविनाशी परमात्मा से उत्पन्न हुआ है।"

इस सम्बन्ध में महाभारत का मन्तव्य है कि 'ऋषियों ने दिन-रात तप करके वेदों को प्राप्त किया, वेद को वाणी स्वयम्भू परमात्मा द्वारा दी गई ऐसी विद्या है जिसका न आदि है न अन्त अर्थात् वह नित्य है। ऋषियों के नामों को, वेदों में वर्णित सृष्टियों को, भूतों के नाना रूपों को और विभिन्न कर्मों के प्रवर्तन को, वह ईश्वर सृष्टि के आदि में वेद के शब्दों से ही बनाता है १।" इस प्रकार महाभारत के मत में वेद परमात्मा द्वारा सृष्टि के आरम्भ में दिया गया ज्ञान है।

१. ऋषियस्तपसा वेदानध्यैयन्त दिवानिशम्।
अनादिनिधना विद्या वागुत्सृष्टा स्वयंभुवा॥
ऋषीणां नामधेयानि याश्च वेदेषु सृष्टयः।
नाना रूपं च भूतानां च प्रवर्तनम्॥
वेदशब्देभ्य एवादौ निर्मिमीते स ईश्वरः॥
—महा० शान्तिपर्व। २३२।२४-२६

CamScanner से स्कैन किया गया

वेद परमात्मा का ज्ञान होने के कारण परमात्मा की भाँति ही नित्य है। वेद ऋषियों के बनाये हुए नहीं हैं। ऋषियों ने तो तप द्वारा वेदों को परमात्मा से प्राप्त किया है।

वेद वेदाङ्ग तत्वज्ञो धनुर्वेद च निष्ठितः।
सर्व शास्त्रार्थ तत्वज्ञः स्मृतिमान् प्रतिभानवान्॥

रामायण के प्रारम्भ में श्रीराम के अनेक गुणों का वर्णन करते हुए महामुनि नारद महर्षि वाल्मीकि को कहते हैं—

अर्थात् श्रीराम वेद वेदाङ्ग के तत्व को जानने वाले हैं धनुर्वेद के पारङ्गत है, सभी शास्त्रों के तत्वों की समझते हैं।" फिर आगे चारों भाइयों की शिक्षा के प्रकरण में महामुनि वाल्मीकि लिखते हैं— 'सर्वे वेदविदः शूराः' अर्थात् सारे ही भाई वेदों के ज्ञाता और शूरवीर थे।

आप सभी उस प्रसङ्ग से परिचित हैं, जब माता सीता की खोज में राम लक्ष्मण ऋष्यमूक पर्वत पर पहुंचते हैं। यहाँ महावीर हनुमान् से प्रथम भेट के समय उनकी बातें सुनकर राम लक्ष्मण से कहते हैं—

नानृग्वेद विनीतस्य ना यजुर्वेद धारिणः।
ना सामवेद विदुषः शक्यमेव विभाषितुम्॥

अर्थात् 'जो ऋग्वेद नहीं पढ़ा, जिसने यजुर्वेद को नहीं सीखा और जो सामवेद को नहीं जानता, वह इस प्रकार की (योग्यता पूर्ण) बातें नहीं कर सकता।'

तुलसी रामायण में भी जिसमें यद्यपि पदे-पदे वेद बिरोधी मान्यताओं का बोल बाला है, प्रकारान्तर से पवित्र वेदों का महत्व अनेकों प्रकरणों में देखने को मिलता है। राम राज्य का वर्णन करते हुए सन्त तुलसी दास लिखते हैं—

वर्णाश्रम निज-निज धरम निरत वेद-पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं नहिं भय शोक न रोग॥

CamScanner से स्कैन किया गया

प्यारे मित्रो, माताओ ! आपने देखा कि किस प्रकार स्वयं वेद और वेदेतर समस्त आर्ष ग्रन्थ, ऋषिगण एवं आचार्य एक स्वर से पवित्र वेदों की महिमा का गान करते हुए, वेद को ईश्वरीय ज्ञान बता रहे हैं। यहाँ कुछ प्रश्न सहज ही उभर आते हैं कि क्या मानव विकास के लिए ईश्वरीय ज्ञान की आवश्यकता है भी ? और है तो वेद ही ईश्वरीय ज्ञान क्यों ? आयें हम संक्षेप से इन प्रश्नों पर विचार करें।

ईश्वरीय ज्ञान की आवश्यकता

१—संसार में दो प्रकार का ज्ञान प्रतीत होता है—एक तो सामान्य ज्ञान, दूसरा विशेष ज्ञान, सामान्य ज्ञान तो जीव में स्वभाव से होता है, किन्तु विशेष ज्ञान किसी निमित्त के बिना हो सकता। जब हम अन्य जीवों से मनुष्य की तुलना करते हैं तो गौ, भैंस घोड़ा आदि शशुओं हंस, आदि पक्षियों, सर्प आदि तिर्यक् जीवों में केवल भोग शक्ति पाते हैं। वे अन्नादि पदार्थों को मात्र भोगते हैं, उनमें पदार्थों की वृद्धि तथा उत्पत्ति का विशेष ज्ञान नहीं है। मनुष्य में भोग शक्ति के साथ-साथ कर्तव्य शक्ति भी है, जिसका आधार है—मानव का विशेष ज्ञान। निश्चय ही मनुष्य को यह ज्ञान किसी निमित्त से मिला। प्रश्न है कि हम गेहूं को गेहूं और चना को चना क्यों कहते हैं ? माता-पिता, भाई-बहिन के सम्बन्ध और व्यवहार का ज्ञान हमें कैसा हुआ ? अन्य विविध प्रकार के ज्ञान-विज्ञान की उपलब्धि हमें कैसे हुई ?

बताते हैं अकबर ने अपने राजत्व काल में इस सम्बन्ध में एक परीक्षण किया। जन्म के साथ ही एक मानव शिशु को भेड़ियों की माँद में रख दिया गया। कुछ समय बाद देखा गया कि वह मानव भाषा से बिल्कुल अपरिचित था, भेड़िया की भाँति ही अपने दो हाथ जमीन पर टिकाकर (चार टांगों के क्रम में) चलता था उसी प्रकार की आवाज करता था और वैसा ही आहार आदि करता था।

CamScanner से स्कैन किया गया

प्रकट है कि हमें यह नैमित्तिक ज्ञान अपने माता-पिता और अध्यापक आदि गुरुओं से मिला। इन गुरुओं से बिना सीखे हम कोई भाषा नहीं सीख सकते थे, कोई ज्ञान नहीं प्राप्तकर सकते थे। हमने हमारे गुरुओं से भाषा और ज्ञान सीखा, उन्होंने अपने गुरुओं से और उनके गुरुओं ने अपने गुरुओं से। इस प्रकार यह गुरुओं की परम्परा ऊपर ही ऊपर चलती चली जाती है। प्रश्न है सृष्टि के आदि में, जो हमारे परम्परा से गुरु थे उनको भाषा-ज्ञान किसने सिखाया ? उनसे पहले तो उन्हें सिखाने वाला और कोई मनुष्य गुरु था नहीं, आदि सृष्टि के मनुष्य तो सबसे पहले मनुष्य थे। उन्हें भाषा-ज्ञान सिखाने वाला गुरु कौन था ? बिना गुरु के सिखाये तो कोई मनुष्य भाषा और ज्ञान सीख नहीं सकता। तब आदि सृष्टि के हमारे गुरुओं का गुरु कौन था ? योग-दर्शनकार कहते हैं कि वह परम गुरु परमात्मा है। 'स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनान् वच्छेदात् (योग० १।२६) परमात्मा हमारे आदि गुरु हैं। उन्हें सृष्टि के आरम्भ में ऋषियों के हृदय में वेदों का प्रकाश करके उन्हें भाषा-ज्ञान सिखाया। उसके पश्चात् एक दूसरे को सिखाने वाले गुरुओं की परम्परा चल पड़ी। इस विवेचन से प्रकट है कि जगत् में ज्ञान की धारा उसी परम गुरु (प्रथम गुरु) परमात्मा से प्रवाहित हुई, और कि ईश्वरीय ज्ञान के अभाव में नैमित्तिक ज्ञान की धारा आगे नहीं बढ़ सकती।

२—प्रिय बन्धुओं और माताओ ! कई बार आप देखते हैं कि एक ही माँ के गर्भ से जन्म लेने वाला एक बालक बड़ा सुन्दर, स्वस्थ मेधावी, यशस्वी, धनी और लोकप्रिय है। जबकि उसी माँ की दूसरी सन्तान दीन-हीन-विकलाङ्ग, बुद्धि हीन और अयशस्वी होती है। आखिर ऐसा क्यों ? जब एक ही साँचे की ईंटें एक जैसी होती हैं, एक ही सांचे की टेबलेट्स एक जैसी होती हैं, तब एक ही माँ के गर्भ से उत्पन्न दो बालकों में यह अन्तर क्यों ? आप कहेंगे कि इसका कारण ईश्वर की कर्म फल मूलक न्याय-व्यवस्था है। ठीक है, पर इस न्याय व्यवस्था का आधार क्या हैं ?

CamScanner से स्कैन किया गया

प्रिय मित्रो ! यह तो आप स्वीकार करते हैं कि जब तक आप किसी भृत्य अथवा सन्तान को किसी कार्य के करने की आज्ञा न दें, कुकर्मों के करने का निषेध युक्त उपदेश न करें तब तक उसको किसी कर्म करने, न करने के लिए दोषी नहीं बना सकते और न उसको दण्ड दे सकते हैं। यदि आप उनको दण्ड दें तो कोई आपको न्याय-शील या भला नहीं कहेगा। यदि आप किसी न्यायशील मनुष्य को दण्ड देते देखेंगे, तो आपको निम्न दो बातें ध्यान आवेंगी। (१) या तो अपराधी ने न्यायाधीश की आज्ञा का उल्लंघन किया है। (२) या वह न्यायाधीश अन्यायी है। पहिली अवस्था में न्यायाधीश की आज्ञा का प्रचार होना आवश्यक है।

प्रिय बन्धुओ ! अब आप विचारें कि संसार में जो करोड़ों जीव नाना प्रकार के दुःख पा रहे हैं इनको देखकर मनुष्य या तो दुःख को पूर्व कर्म का फल समझेगा, दाता ईश्वर को अन्यायी जानेगा किन्तु ईश्वर न्यायकारी है, उसको अन्यायी कहना केवल मूर्खों का प्रलाप मात्र है। हाँ, यह सब मनुष्यों के पापों का फल है। पाप ईश्व-राज्ञा को उल्लंघन करने का नाम है। इससे भी सिद्ध होता है कि ईश्वर ने अवश्य कोई आज्ञा दी है, जिसके अनुसार चलकर मनुष्य इन दुखों से छूट सकता है। जिसके विरुद्ध चलने ही से मनुष्य इन दुःखों से ग्रसित हुआ है।

प्यारे भाइयो ! इस प्रकार स्पष्ट ही ईश्वर निर्मित्त नियम या आज्ञा—सत्य विद्या के पुस्तक की आवश्यकता प्रतीत होती है और ईश्वर के न्यायादि गुणों से भी यही बोध होता है कि अवश्य उसने प्रकृति के नियमों का यथावत् ज्ञान संसार में प्रचारित किया है। आखिर जब एक छोटे से छोटे राज्य के सुसंचालन के लिए संविधान या कानून संहिता की आवश्यकता है तो इस अखिल विश्व ब्रह्माण्ड के सुसंचालन के लिए भी निश्चय ही ईश्वरीय संविधान या कानून संहिता आवश्यक है उसी दैवी कानून संहिता का नाम है—वेद।

CamScanner से स्कैन किया गया

३—आयें हम इस विषय में एक अन्य बिन्दु पर भी विचार कर, अच्छा बताइये, परम कृपालु परमात्मा ने हमें ये दो भौतिक चक्षु किस काम के लिए दिये हैं ? आप कहेंगे—देखने के लिए। पर क्या हम केवल इन नेत्रों से ही देख सकते हैं ? निश्चय ही नहीं। इन भौतिक नेत्रों की सहायता के लिए दयालु ईश्वर ने हमें प्रकाश का पुञ्ज भौतिक सूर्य भी दिया है। घोर अन्धेरे में हमारे पास नेत्र होते हुए भी सूर्य प्रकाश के सर्वथा अभाव में हमारे नेत्र देख नहीं पाते, हम यदि उस अवस्था में चलने का यत्न भी करें तो पदे-पदे ठोकर खाते हैं। मित्रो ! हमें हमारी दयामयी माँ ने इन दो भौतिक नेत्रों के अतिरिक्त एक नेत्र और दिया है। वह है—ज्ञान या बुद्धि का नेत्र। आपने शायद सुना होगा। कई बार जब किसी बच्चे से कोई काम बिगड़ जाता है तो माता-पितादि उसे कहते हैं—'तेरी हिये की फूट गई थी, अर्थात् तुझे इतनी समझ नहीं थी, तूने यह काम बिगाड़ दिया।' वह हृदय का नेत्र ही विवेक नेत्र या ज्ञान चक्षु है।

पौराणिक शिव का चित्र आपने देखा होगा। उसके भाल में एक तीसरा नेत्र रहता है। यह तृतीय नेत्र किसी शिव विशेष के पास ही था, ऐसी बात नहीं है। हम सबके पास यह तृतीय नेत्र—विवेक नेत्र है जिस किसी का भी यह तृतीय नेत्र-ज्ञान-चक्षु-खुला रहता है, वह व्यक्ति परिवार समाज एवं राष्ट्र 'शिव' बन जाता है। अर्थात् अपना और अन्यों का कल्याण कर जाता है। जिसका यह तृतीय नेत्र या बुद्धि नेत्र बन्द रहता है, वह व्यक्ति, परिवार या राष्ट्र 'शव' बन बन जाता है। मृतवत् हो जाता है पर ध्यान रहे जिस प्रकार उस परम कारुणिक प्रभु ने भौतिक नेत्रों की सहायता के लिए भौतिक सूर्य बनाया है, बिना उसके हम देख नहीं पाते, वरन् ठोकर खाते हैं। ठीक वैसे ही ज्ञान नेत्र की सहायता के लिए भी परमात्म देव ने ज्ञान सूर्य का निर्माण किया है। इसी ज्ञान-विज्ञान प्रकाश पुञ्ज का नाम है—वेद-संसार के लोग जब इस ज्ञान-सूर्य वेद के प्रकाश के बिना

CamScanner से स्कैन किया गया

केवल अपनी बुद्धि के बल से आगे बढ़ना चाहते हैं तो वे पदे-२ ठोकर खाते हैं। बड़ी से बड़ी वैज्ञानिक उपलब्धियों के पश्चात् भी, वेद की शिक्षाओं से विमुख होने की स्थिति में मानव जीवन का चरम लक्ष्य-शान्ति की प्राप्ति उनसे दूर ही रहती है। बड़ी से बड़ी भौतिक विजयों के पश्चात् भी संसार में आज जो अशान्ति है, प्रभु पुत्र मानव आज जो दानव बन रहा है उसका कारण ईश्वरीय ज्ञान वेद की शिक्षा रहित कोरा बुद्धिवाद है। कवि रत्न 'प्रकाश' जी ने बड़े प्रेरक शब्दों में इस स्थिति का चित्रण यों किया है—

मानव मानवता छोड़ नहीं

विज्ञान मुक्ति का कारण है, यदि श्रद्धा का मधु मिश्रण है।
तू बुद्धिवाद के पाहन से सहृदयता का घट फोड़ नहीं॥

उपर्युक्त विवेचन से भली भांति प्रकट है कि बुद्धि या ज्ञान नेत्र को सहायता के लिये (भौतिक नेत्रों के लिए भौतिक सूर्य की भांति ही) ज्ञान सूर्य को—ईश्वरीय ज्ञान की आवश्यकता है॥

आप यहाँ एक जिज्ञासा कर सकते हैं कि हमने यह तो मान लिया कि नैसर्गिक ज्ञान की धारा के प्रवाह की दृष्टि से, ईश्वरीय संविधान की दृष्टि से बुद्धि नेत्र की सहायता की दृष्टि से ईश्वरीय ज्ञान या दैवी संविधान की आवश्यकता है, किन्तु वेद ही ईश्वरीय ज्ञान क्यों ? जिन्दावस्ता, बौद्ध त्रिपिटक, बाइबिल, कुरान, पुराण, गुरु ग्रन्थ-साहब आदि ईश्वरीय ज्ञान क्यों नहीं ?

प्रश्न बड़ा रोचक और महत्व पूर्ण है। इस प्रश्न के उत्तर के लिए आयें हम कुछ कसौटियाँ निर्धारित करें कि ईश्वरीय ज्ञान में क्या-क्या विशेषतायें होनी चाहिए। इस सम्बन्ध में चिन्तन करने पर निम्न बिन्दु उभर कर सामने आते हैं।

१—ईश्वरीय ज्ञान मानव सृष्टि के आदि में होना चाहिए। जिस प्रकार किसी राष्ट्र का संविधान उसके आरम्भ में ही बनता है॥ बीच में या बाद में बनने पर यह समस्या आयेगी कि उसके पहले

CamScanner से स्कैन किया गया

किस आधार पर न्याय व्यवस्था चलती थी ? ईश्वरीय ज्ञान बीच में आने पर ईश्वर की न्याय व्यवस्था में दोष आयेगा। ईश्वर पूर्ण न्यायकारी और निर्विकारी है। इस कसौटी पर कसने से वेद ही ईश्वरीय-ज्ञान निश्चित होता है। हमारी वर्तमान सृष्टि की आयु हमारे ऋषियों की काल गणना और वैदिक पुरोहितों के संकल्प पाठ के अनुसार लगभग-दो अरब वर्ष है। हर्ष का विषय है कि वैज्ञानिकों ने भी जो कभी सृष्टि की आयु कुछ हजार वर्ष मानते थे, फिर कुछ लाख और कुछ करोड़ वर्ष मानने लगे, अब यूरेनियम और रेडियम धातु के आविष्कार के साथ वर्तमान सृष्टि की आयु लगभग दो अरब वर्ष स्वीकार की है। सृष्टि की आयु के क्रम में ही यूरोपियन विद्वान् भी वेदों का काल हजारों से लाखों और अब कुछ करोड़ वर्ष मानने लगे हैं। वह समय दूर नहीं है जब वे आर्य ऋषियों के मन्तव्य को स्वीकारते हुए, वेदोत्पत्ति का काल मानव सृष्टि के साथ ही स्वीकार करेंगे। इतना तो प्रो० मैक्समूलर की भाँति ही आज भी सभी पौर्वात्य और पाश्चात्य मानते हैं कि—The Rigved is the oldest book in the library of the world' अर्थात् ऋग्वेद विश्व के पुस्तकालय में प्राचीनतम ग्रन्थ है। उपर्युक्त विवेचन से प्रकट है कि इस कसौटी पर एक मात्र वेद ही ईश्वरीय ज्ञान सिद्ध होता है, क्योंकि अन्य जितने भी ग्रन्थ हैं, सभी महाभारत काल के पश्चात् के हैं। इनमें सबसे अधिक पारसियों के धर्म ग्रन्थ जिन्दावस्ता की आयु लगभग ४। हजार वर्ष है, बौद्ध मत के धर्म ग्रन्थ लगभग २॥ हजार वर्ष पुराने हैं, बाइबिल को अभी-अभी दो हजार वर्ष भी नहीं हुए, कुरान की आयु लगभग १४०० साल है। यहाँ यह भी मननीय है कि इन सभी ग्रन्थों में जो २ उत्तम शिक्षायें हैं वे सभी धर्म के आदि स्रोत वेद से ही आई हैं, जैसे दीपक, लालटेन, बल्ब, मोमबत्ती आदि में जो भी प्रकाश है उसका मूल स्रोत सूर्य है।

५—ईश्वरीय ज्ञान की दूसरी कसौटी है—वह पूर्ण होना चाहिए

CamScanner से स्कैन किया गया

स्थिति नहीं हो सकता। यदि ऐसा मान लिया जावे तो पहले की प्रजाओं के साथ परमात्मा का न्याय नहीं माना जा सकता। इस कसौटी पर भी एक मात्र वेद ही खरा उतरता है। वेद ज्ञान की स्थिति है—

पूर्णमिदः पूर्णमिदं पूर्णाद पूर्ण मुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्ण मादाय पूर्ण मेवा वशिष्यते॥

३—मित्रो और माताओ! ईश्वरीय ज्ञान की तीसरी कसौटी है कि उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन या भूल सम्भव नहीं है जिस प्रकार मनुष्य कृत दीपक और लेम्प बदलते रहते हैं, परन्तु सूर्य नहीं बदलता, इसी प्रकार मनुष्य कृत ज्ञान बदलता रहता है, ईश्वरीय ज्ञान एक सा रहता है। वह नित्य ज्ञान होता है। परिवर्त्तन सर्वदा किसी कमी या भूल को दूर करने अथवा बुरे तत्वों (आशय) को निकाल कर अच्छे विषय प्रवेश करने के लिए होता है। परन्तु ईश्वर सर्वज्ञ होने से उसके ज्ञान में कोई न्यूनता या भूल सम्भव नहीं है।

४—ईश्वरीय ज्ञान की चौथी कसौटी यह है कि—वह बुद्धि की सहायता के लिए होने से बुद्धि संगत और तर्क सम्मत होता है। जिस प्रकार सूर्य को आँधी और तेजवायु से कोई भय नहीं, किन्तु दीपक और लैम्प उससे बुझ जाते हैं, उसी प्रकार ज्ञान बुद्धि और तर्क का स्वागत करता है। अतः जिन पुस्तकों में यह बताया जाता हो कि धर्म में बुद्धि का प्रवेश नहीं अथवा युक्ति या तर्क देने से 'काफिर' होने का दोष आता है, वे पुस्तकें अपने को मनुष्य कृत घोषित कर रही हैं। **'बुद्धि पूर्वा कृतिर्वेदः' तथा 'यस्तर्केणानुसन्धते स धर्मो वेद नेतरः'** के आधार पर प्रकट है कि एक मात्र वेद ही ईश्वरीय ज्ञान है।

५—ईश्वरीय ज्ञान की पाँचवी कसौटी है—कि वह सृष्टि निर्माता की कृति होने से सृष्टि नियमों और विज्ञान के अनुकूल होना चाहिए। उसमें किसी प्रकार के मोजजों (चमत्कारों) और सृष्टि नियमों अथवा विज्ञान के बिरोधी बातों का उल्लेख नहीं हो सकता।

CamScanner से स्कैन किया गया

मुहम्मद ने चांद के दो टुकड़े कर दिये, पृथिवी चटाई की तरह चपटी हैं, ईसा ३ दिन के बाद कब्र से जी उठा, हनुमान् ने उगते हुए सूर्य का गाल में दे लिया आदि चमत्कार ईश्वरीय ज्ञान में सम्भव नहीं। ईश्वरीय ज्ञान और सत्य विज्ञान दोनों हाथ में हाथ मिलाकर चलते हैं।

६—**ईश्वरीय ज्ञान की छठी कसौटी** है—जिस प्रकार सूर्य में कोई भाग अन्धकार का नहीं, वरन् वह सम्पूर्ण प्रकाश है इसी प्रकार ईश्वरीय ज्ञान में कोई भाग गल्प और गाथाओं का नहीं, वरन् सम्पूर्ण सत्य विद्याओं का प्रकाश ही है। ईश्वरीय ज्ञान में सभी सत्यविद्याओं का मूल होना आवश्यक है। इस दृष्टि से भी एकमेव वेद ही ईश्वरीय ज्ञान सिद्ध होता है।

७—**ईश्वरीय ज्ञान की सातवीं कसौटी है** कि—उनमें किसी देश विशेष का भूगोल और किसी काल बिशेष का इतिहास नहीं हो सकता। इस कसौटी पर भी वेद हो खरे उतरते हैं। वेद में जो गंगा, यमुना, सरस्वती अथवा राम, कृष्ण, अर्जुन आदि नाम मिलते हैं, उन प्रकरणों के देखने से स्पष्ट हो जाता है कि वे भारत की नदियों अथवा महापुरुषों के भूगोल या इतिहास से सम्बन्धित नहीं हैं। वेद में इनके नाम नहीं हैं, वरन् वेद से लेकर लोक में ये नाम रखे गये हैं।

८—**ईश्वरीय ज्ञान की आठवीं कसौटी है कि**—उसमें उसके निर्माता ब्रह्म का पूर्ण और सत्य ज्ञान हो। वह ईश्वर के यथार्थस्वरूप का बतलाने वाला हो। जिसमें अनेक ईश्वरों को कल्पना हो, जिसमें परमात्मा को सातवें आसमान पर चौथे आसमान पर रहने वाला अथवा क्षीर सागर में शयन करने वाला माना गया हो, इसी प्रकार परमात्मा के प्रत्येक कार्य के लिए जिसमें फरिश्ते और पैगम्बर बताये गये हों वह ईश्वरीय ज्ञान कदापि नहीं हो सकता।

अन्त में यह तथ्य भी माननीय है कि जिस प्रकार संसार में एक ही सूर्य (ईश्वरीय प्रकाश) है, शेष सारे दीपक आदि मनुष्य कृत

CamScanner से स्कैन किया गया

हैं इसी प्रकार संसार में ईश्वरीय ज्ञान की भी एक ही पुस्तक है, शेष सब मनुष्य कृत हैं, जिस प्रकार सूर्य सृष्टि के आदि में सदैव उत्पन्न होता है, बीच में नहीं इसी प्रकार ईश्वरीय ज्ञान) पुस्तक भी सृष्टि के आदि में उतरती है मध्य में नहीं। जिस प्रकार सूर्य में कोई भाग अन्धकार का नहीं, प्रकाश ही प्रकाश है, उसी प्रकार ईश्वरीय ज्ञान में समस्त सत् विद्यायें विद्यमान हैं। माताओ और मित्रो ! उपर्युक्त सम्पूर्ण विवेचन से सुस्पष्ट है कि एक मात्र वेद ही ईश्वरीय ज्ञान है।

यहाँ यह भी विचारणीय है कि जिस प्रकार ईश्वर का बनाया सूर्य सबके लिए है, ईश्वर की वायु सबके लिए है, वैसे ही ईश्वर का ज्ञान भी **शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्राः**' और **यथेमां वाचं कल्याणी मावदानि जनेभ्यः०**' इन पावनी वेद ऋचाओं के अनुसार भगवान् का सभी अमृत पुत्रों—सभी वर्णस्थ मानवों के लिए है। वह सभी कालों, ज्ञान भी सभी देशों के सभी स्त्री-पुरुषों के लिए समान रूप से सेवनीय है। इस सार्वकालिक सार्वभौमिक शाश्वत सत्य ज्ञान को प्राप्त कर जीवन को धन्य बनाने का—बिना किसी भेद-भाव के—सभी को समान अधिकार है।

प्रिय बन्धुओ और माताओ ! समय था जब सारे संसार में एक ही धर्मग्रन्थ था—वेद। एक ही धर्म था—वैदिक धर्म, सनातन धर्म या मानव धर्म। एक ही उपास्यदेव था—ओ३म्। एक ही गुरुमन्त्र था—गायत्री। एक ही अभिवादन था—नमस्ते। संसार के श्रेष्ठ मानवों को तब एक ही संज्ञा थी—आर्य। और तब एक ही विश्वभाषा थी—संस्कृत। एकता और प्रेम के इन सात सूत्रों में बँधी हुई मानव प्रजा सुख और शान्ति की धाराओं में नहाकर वैदिक वर्णाश्रम धर्म का पालन करती हुई जीवन को धन्य बनाती थी।

ऐसा था गरिमामय वैदिक युग, पर यह स्थिति सदैव नहीं रही। महाभारत के युद्ध में रहा-सहा श्री-सर्वस्व भी जाता रहा। फिर आया वाम (उल्टा) मार्ग। सब कुछ उलट गया। पवित्र वेदों के लिए—'त्रयो वेदस्य कर्त्तारो भाण्ड धूर्त निशाचरः' कहा जाने लगा।

CamScanner से स्कैन किया गया

अधर्म ने धर्म का स्थान ले लिया। पवित्र यज्ञों में पशुबलि एवं नर बलि आरम्भ हुई तथा मद्य-मीन-मांस-मैथुन को मोक्षदायक कहा जाने लगा। कैसा घोर घटाटोप ! अविद्या का कैसा क्रूर ताण्डव !! उव्वट, महीधर और सायण द्वारा पवित्र वेदों के कैसे घोर घृणित भाष्य !!! ××× सदियों के बाद, सहस्राब्दियों के पश्चात् फिर उस पर करुणामयी मङ्गलमयी माँ की कृपा हुई। वेदोद्धारक सत्य सनातन धर्मोद्धारक आचार्य दयानन्द जैसे सपूत को पाकर भारत-भूमि फिर एक बार धन्य हो उठी। महर्षि ने प्रबल प्रभञ्जन (तीव्र वायु) बनकर वेद सूर्य पर छाई मत मतान्तरों की बदलियों को छिन्न-विच्छिन्न किया और दानवता के तीव्र दंशों में कराहती, मत-पन्थों की पगडण्डियों में भटक रही प्रभु की प्यारी मानव प्रजा को वेद का राजपथ दर्शाते हुए गुहार लगाई—'वेदों की ओर लौटो।'

महर्षि ने पुनः 'आर्यसमाज' की स्थापना की, पुनः हमारा उपास्यदेव—'ओ३म्' हमारा प्यारा 'आर्य' नाम अभिवादन—'नमस्ते' हमें वापिस दिया। और फिर से हमें हमारे 'वेद' और गुरु मन्त्र 'गायत्री' को दिया। ऋषि ने हमें फिर से हमारे भूले हुए वैदिक यज्ञ-याग का 'सत्यार्थ' और संस्कार दिये साथ ही ऋषि प्रणीत यौगिक शैली का उद्धार करते हुए फिर से वेद भाष्य की खोई हुई कुञ्जी दी। आज उसी ऋषिराज की कृपा से प्रो० मैक्समूलर, महर्षि अरविन्द तथा अन्य पाश्चात्य और पौर्वात्य विद्वान् वेदों की महिमा गान करने लगे हैं। उसी विषपायी देवता की अनुकम्पा से आज हम वेदों के श्रवण-श्रावण के पावन पर्व श्रावणी के उपलक्ष में यह वेद सप्ताह मना रहे हैं। आयें हम अपने रोम-रोम से उस वेदों वाले ऋषि के प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकाशित करते हुए उसका जय-जयकार करें—

वेदोद्धारक जगद्गुरु ऋषि दयानन्द की.....जय !
वेद धर्म के प्रतिपालक भगवान् राम की.....जय !!
वेद मर्यादा के संरक्षक योगेश्वर श्रीकृष्ण की जय !!!

❀

CamScanner से स्कैन किया गया

दूसरा दिन—

जीवन कला [१]

त्रिवेणी सङ्गम । आस्तिकता का झरना

ओ३म् ईशावास्य मिद ँ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।
तेन यक्तेन भुञ्जीथाः मागृध कस्य स्विद्धनम् ॥

—यजु० ४०।१॥

सामूहिक सङ्कीर्तन

अखिलाधार अमर सुखधाम, एक सहारा तेरा नाम ।
तेरा नाम-तेरा गाम, एक सहारा तेरा नाम ॥१॥
कैसी सुन्दर सृष्टि बनाई, सूर्य-चन्द्र सी ज्योति जगाई ।
बहुत मनोहर वायु बहाई, एक से एक विलक्षण काम ॥ एक० २
शीतल सरस सुधा सम पानी, अमृत अन्न खायं सब प्राणी,
गुण गावें ज्ञानी अरु ध्यानी, जपें निरन्तन आठों याम ॥३
पत्र-पत्र रंग रूप निराला, पुष्प-पुष्प में गन्ध विशाला,
फल-फल है अमृत का प्याला, तेरो लीला ललित ललाम ॥४
तुम हो 'अमर' सुपथ के स्वामी, मैं हूं अमर सुपथ अनुगामी
एक नाक के दोनों नामो, मैं गुण रहित आप गुणधाम ॥ एक ५

मान्य मातृशक्ति और उपस्थित सत्सङ्ग प्रेमी बन्धुओ ! निस्सन्देह हम सभी अत्यन्त सौभाग्यशाली हैं कि हमने अपनी जन्म-जन्मान्तर की साधना और परम पिता परमात्मा की असीम कृपा से यह दिव्य मानव का चोला पाया है। गो० तुलसीदास ने लिखा है—

CamScanner से स्कैन किया गया

बड़े भाग मानुष तन पावा। सुर दुर्लभ सद् ग्रन्थन गावा।

महाभारतकार महर्षि व्यास ने भी कहा है **'नहि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि कश्चित्'** मनुष्य से अधिक श्रेष्ठ अन्य कोई योनि नहीं है। मित्रो ! ऐसे सुर सुर दुर्लभ मानुष चोले को पाकर हमें प्रतिदिन ही नहीं प्रतिक्षण विचारना चाहिए कि हम इस अमूल्य निधि को पाकर भी घाटे का सौदा तो नहीं कर रहे। कहीं कवि की यह उक्ति तो हम पर नहीं घट रही—

नर तन पाय विषय मन देहीं, पलटि सुधा ते शठ विष लेहीं।

एक था यात्री। यात्रा पर निकला—व्यापार करने। उसकी झोली में हीरे-मोती-लाल आदि रत्न थे। वह इनमें और भी वृद्धि करेगा, इस विचार से यात्रा पर निकला था। मार्ग में उसे मिला भाँग का वन। बस फिर क्या था उसे नशा चढ़ गया। नशे में लगा फेंकने अपनी झोली के रत्नों को। बालकों को खेल सूझा। वे उसकी ओर कंकड़ी फेंकने लगे। यह और भी तेजी से अपने रत्नों को फेंकने लगा, बच्चे और भी तेजी से कंकड़ी फेंकने लगे, यह भी और अधिक तेजी से अपने रत्न फेंकने लगा। समय आया जब नशा कुछ ढीला हुआ, इसे कुछ होश आया। पर तब तक तो इनकी झोली लगभग खाली हो चुकी थी। लगा रोने-पछताने ! हाय, मैंने यह क्या किया ! पर 'अब पछताये होत क्या जब चिड़ियाँ चुग गईं खेत' मित्रो और माताओ ! आओ, सवय रहते हम चेत करें, कहीं उस भोले नादान यात्री की भांति हमें भी अन्त में पछताना नहीं पड़े।

प्रश्न है कैसे सफल हो हमारा यह अमूल्य मानव जीवन। इसके लिये हमें सर्व प्रथम अपने जीवन के उद्देश्य—अपनी यात्रा के उद्देश्य को जानना होगा। आप एक ऐसे यात्री की कल्पना कीजिये जो घर से निकल कर प्लेटफार्म पर आ गया है और इधर से उधर घूम रहा है। आप उससे पूछते है—कहिये, महाशय ! आपने कहाँ जाना है ? और वह उत्तर देता है—श्रीमान् मैंने जाना तो है, पर यह ज्ञात नहीं है कि कहाँ जाना है ? निश्चय ही आप हसेंगे उस भोले

CamScanner से स्कैन किया गया

व्यक्ति पर। क्या हममें से अधिकाँश की यह स्थिति नहीं है ? प्रात: से लेकर रात्रि और पुन: प्रात: से रात्रि तक हमारी दौड़ जारी है। कोई हमें तनिक रोककर पूछे कि आखिर आपकी इस दौड़धूप का, यात्रा का लक्ष्य क्या है ? कितने हैं हममें से,जो इस प्रश्न का उत्तर दे सकेंगे ?

आप कहेंगे कि हमें कैसे ज्ञात हो कि हमारे जीवन का लक्ष्य क्या है ? और उसकी प्राप्ति के साधनोपाय क्या है ? अर्थात् हमें क्या कुछ करने से तथा क्या कुछ न करने से हमारा लक्ष्य मिल सकता है ? प्रिय मित्रो ! हमारे इसी जीवन लक्ष्य और उसका प्राप्ति के साधनों या करणीय कर्त्तव्यों का उपदेश वेद माता हमें देती है।

भगवान् ने जब अपनी इस मनमोहिनी सुन्दर सृष्टि का निर्माण कर लिया, जब सब प्रकार की वनस्पतियों औषधियों, अन्नों, फल-फूलों और पशु-पक्षियों तथा कृमि कीट-पतङ्ग आदि की रचना कर ली तब अन्त में सृष्टि के मुकुट, सृष्टि के शृंगार इस मनुष्य का रचना की। पर उसकी यह सम्पूर्ण रचना अपूर्ण और अधूरा रहती यदि वह मानव के निर्माण के साथ उसके जीवनोद्देश्य का परिचय कराने के लिये और यह बताने के लिए कि मानव इस सम्पूर्ण सृष्ट का किस तरह उपयोग और उपभोग करे जिससे उसका जीवन लक्ष्य सिद्ध हो सके, उसे अपना पबित्र वेद ज्ञान नहीं देता।

कल की कथा में हम कुछ विस्तार से विचार कर चुके हैं कि वेद परमात्मा का ज्ञान है। वेद कोई पूजा-पाठ या रोली-चावल चढ़ाने का ग्रन्थ नहीं, वह तो जीवन ग्रन्थ है। वेद हमें जीवन जीने की कला या जीवन-कला सिखाता है। जिन्दगी तो यों सभी जीते हैं पर जिन्दगी को कुछ इस अन्दाज से जियें कि—

जब हम जनमे जगत् में, जग हँसा हम रोय।
ऐसी करनी कर चलें, हम हँसें जग रोय॥

तो यह जीवन जीने की कला होगी। शरीर का रोम-रोम

CamScanner से स्कैन किया गया

तीव्र विष के कारण फोड़ा बनकर फूट रहा है, देह का पोर-पोर बेहद पीड़ा से भरा है। जीवन कला के आचार्य ऋषिराज दयानन्द के चेहरे पर एक अलौकिक मुसकान है। वे कह रहे हैं—'मेरे ईश्वर ! अहा, कैसी अच्छी लीला की ! तेरी यही इच्छा है, प्रभो !' तेरी इच्छा पूर्ण हो वाक्य के पूरा होते २ वे दीर्घ निःश्वास के साथ परम पवित्र ओम् की ध्वनि करते हुए जीवन-लीला को विराम देते हैं।

यहां प्रभो ! तेरी इच्छा पूर्ण हो, यह शब्द विशेष ध्यान देने योग्य है। मानो मेरी कोई इच्छा नहीं, प्रभो तेरी इच्छा ही मेरी इच्छा है। तेरी वेदाज्ञा का पालन ही तो मेरा धर्म है। समस्त वेद की शिक्षा के अणुसार कर्त्तव्य कर्मों का पूर्ण संलग्नता से करते हुए भी समर्पित जीवन का यह आदर्श हो तो जीवन कला है।

ईशावास्य मिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ॥

पवित्र यजुर्वेद के ४० वें अध्याय का यह पहिला मन्त्र जीवन-कला की कुञ्जी है। यह विश्व-शान्ति का आधार है महात्मा गान्धी कहा करते थे कि यदि संसार का समस्त ज्ञान-विज्ञान नष्ट हो जाये, केवल यह एक वेद मन्त्र बचा रहे तो मनुष्य को जीवन जीने की कला सिखाने और समस्त विश्व को सुख-शान्ति पाठ पढ़ाने के लिए पर्याप्त है।

मन्त्र का महिला सूत्र है-**वैदिक त्रैतवाद**। मन्त्र कहता है—(यत्किञ्च) जो कुछ भी (जगत्यां जगत्) संसार में स्थिति है (इदं सर्वम्) यह सब (ईशा वास्यम्) ईश्वर से बसने योग्य है। अर्थात् ईश्वर इस जगत् के कण-कण में व्यापक है। ईश्वर सर्व व्यापक है। तो एक तो यह व्याप्य जगत्, दूसरा इसमें व्यापक परमात्मा—इस प्रकार दो सत्ताओं का अस्तित्व तो इतने मन्त्रांश से हो जाता है। अब मन्त्र के उत्तरार्ध में जो (त्यक्तेन भुञ्जीथाः) त्याग पूर्वक भोग करने और (मा गृधः कस्य स्विद्धनम्) किसी के धन का लालच न करने

CamScanner से स्कैन किया गया

या सब धन परमात्मा का है, ऐसा समझकर उसका उपभोग करने का जो आदेश है, यह किसके लिये ? यह जड़ प्रकृति के लिए तो हो नहीं सकता। निश्चय ही यह तीसरी अनादि चेतन सत्ता जीवात्मा के लिए है। इस प्रकार मन्त्र हमें ईश्वर-जीव और प्रकृति के इस 'त्रिक्' का परिचय देता है।

संसार का सारा पसारा—मैं, तू और वह का ही पसारा है। 'मैं' अर्थात् जीवात्मा, 'तू' अर्थात् प्रकृति और 'वह'—परमात्मा, ये तीन शाश्वत सत्तायें विश्व-प्रपञ्च के मूल में हैं। मन्त्र कहता है कि इन तीनों के अस्तित्व में हमारी दृढ़ आस्था हो और तीनों के स्वरूप और आपसी सम्बन्धों की हमें पूर्ण जानकारी हो, तभी हमें जीवन जीने की कला आ सकेगी।

मित्रो और माताओ ! एक वे हैं जिनका विचार है—जो दीखता है वही सत्य है, जो नहीं दीखता है वह असत्य है, कल्पित है। अर्थात् यह संसार और भोग दीखते हैं। यह शरीर और इन्द्रियाँ, कोठी और कार दीखते हैं। ये सब सत्य हैं। इनका नारा है—खाओ पीओ और मौज करो (Eat drink, and be merry) रावण ने सीता को यही कहा था—'भुंक्ष्व भोगान् पिब रमस्व च) संसार के भोगों को खूब भोगो, मरने के बाद क्या होगा, किसने देखा है ? परलोक और पुनर्जन्म सब मिथ्या हैं। ईश्वर नहीं दीखता, आत्मा नहीं दीखती। अत· यह सब मिथ्या कल्पनायें हैं।

दूसरे हैं जिनका कहना है—जो दीखता है वह सब मिथ्या है, स्वप्नवत् है। जो नहीं दीखता वही सत्य है। संसार दीखता है, माता-पिता बन्धु-बान्धव, अड़ोस-पड़ौसी, समाज-राष्ट्र यह सब दीखते हैं—यह सब मिथ्या हैं। परमात्मा नहीं दीखता अतः वही सत्य है। इनका उद्घोष है—'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या।' 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन' आदि वेद मां इन दोनों के मध्य खड़े हो मानो महात्मा कबीर के शब्दों में कहती है—'अरे इन दोनों राह न पाई।' इनमें से पहले वाले हैं अति भोगवादी या अति भौतिकवादी। अमेरिका और

CamScanner से स्कैन किया गया

रूस ही नहीं आज सभी देश और लगभग सम्पूर्ण मानव समाज व्यवहार में इसी मान्यता का है। एक ओर यह अति भौतिकवादी दर्शन है जिसमें आत्मतत्व और परमात्मतत्व की सर्वथा उपेक्षा करके केवल जड़ प्रकृति से निर्मित शरीर के सुख-विलास को ही प्रमुखता है और उसकी प्राप्ति में किसी प्रकार के न्याय-अन्याय, सत्य-असत्य या पुण्य-पाप के विचार का अवसर नहीं है। आश्चर्य में डालने वाली वैज्ञानिक प्रगति अथवा भौतिक विजयों के पश्चात् भी आज चारों ओर व्याप्त अशान्ति, कराह और विनाश के दृश्यों का मूल यही अध्यात्म-शून्य अति भौतिकता है। दूसरी ओर लोक की उपेक्षा कर परलोक की रट लगाने वाली अति आध्यात्मिकता है, इसमें अपने प्रति, परिवार-समाज-राष्ट्र-विश्व मानव और प्राणि मात्र के प्रति कर्त्तव्य कर्मों को सर्वथा भुलाकर निष्क्रियता और अकर्मण्यता का बोलवाला है—

अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम।
दास मलूका कह गये सबके दाता राम॥

× × ×

रूखी-सूखी खाइ के रहौ खाट पै सोइ।
अनहोनी होनी नहीं, होनी होइ सो होइ॥

—जीवन कला से शून्य ऐसे घोर विनाशकारी विचार इसी निष्क्रियता या जड़ता का दुष्परिणाम हैं। हमारे महान् राष्ट्र भारत की हजार वर्ष लम्बी दासता, दरिद्रता-दीनता इसी कर्त्तव्य कर्म के प्रति उदासीनता या पलायनवादी (भगोड़ा) मनोवृत्ति का दुष्फल है।

मङ्गलमय भगवान् ने अपने अमृत पुत्र मानव को अपनी कल्याणी वेद वाणी द्वारा इस विषय में सावधान किया है—

अन्धन्तमः प्रविशन्ति ये ऽ विद्या मुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायाँ रताः॥यजु०४०।१२

CamScanner से स्कैन किया गया

अर्थात् केवल अविद्या (जड़ प्रकृति) के उपासक (कोरे प्रकृति-वादी या अति भौतिकवादी) घोर अन्धकार (अन्तर की अशान्ति) को पाते हैं, किन्तु कोरे अध्यात्मवादी (परलोकवादी) उनसे भी अधिक दुरवस्था (दीनता द्ररिद्रता और दासता) को प्राप्त होते हैं। फिर क्या मार्ग है शान्ति का, क्या है राह सद्गति की, अमूल्य मानव जीवन की धन्यता की ? वेद माँ अशान्त व्यथित मानव को जीवन जीने की कला सिखाती हुई आश्वस्त करती है—

विद्याञ्चऽविद्याञ्च यस्तद्वेदो भयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्याऽमृत मश्नुते ॥यजु०४०।१३

भौतिकता (अविद्या) और आध्यात्मिकता (विद्या) दोनों का समन्वय (सहचार) ही जीवन जीने का सच्चा कला है। भौतिक उन्नति से दुःख दूर होकर आवश्यक सुख-सुविधायें मिलेंगी और आध्यात्मिक उन्नति से अमृतत्व=मोक्ष या सच्ची शान्ति मिलेगी। लोक और परलोक का यह समन्वय ही जीवन-कला है। वैशेषिक दर्शनकार महर्षि कणाद के शब्दों में—"यतोऽभ्युदय निःश्रेयस् सिद्धिः स धर्मः" लोक एवं परलोक का समन्वय ही धर्मतत्व है। यही जीवन-पथ है।

यहाँ विषय को अधिक स्पष्ट करने के लिये एक दृष्टान्त अधिक सहायक होगा—किसी गाँव में एक अन्धा और लंगड़ा रहते थे। एक बार ऐसा हुआ कि गाँव में आग लग गई। सबको अपने प्राण बचाने की पड़ी। सभी भाग खड़े हुए। अन्धे और लंगड़े को किसी को सुधि न रही। आग की लपटें बढ़ीं आ रही थीं मानो इन अन्धे और लंगड़े को अपने उदर में समा लेने को आतुर हों। दोनों को बचने का कोई रास्ता नहीं सूझ रहा था, फलतः वे बेहद परेशान थे। सहसा एक यात्री उधर से गुजरा। इन दोनों को परेशान देख उसने सहानुभूति के स्वर में पूछा—भाई, आप दोनों परेशान नजर आते हैं, बात क्या है ? इनमें से अन्धे ने कहा—क्या आप भी मेरी तरह अन्धे ही हैं, देखते नहीं आग की लपटें बढ़ी चली आरही हैं ? अब थोड़ी देर में ही

CamScanner से स्कैन किया गया

हम दोनों आग की लपटों में समा जायेंगे। क्या आप हमारी कुछ मदद कर सकेंगे ?"

यात्री मुस्कराया, बोला—"भाइयो, आपको किसी अन्य की सहायता की जरूरत नहीं है। अन्धे को उसने कहा—भाई, तुम्हारे पास आँखें नहीं हैं, पर टांगें तो हैं ? इसी प्रकार लङ्गड़े को उसने प्रेरणा की—तुम्हारे पास टांगें नहीं हैं पर आँखें तो हैं ? आप दोनों मिल जाइये। अन्धे को उसने पुनः कहा कि तुम अपने कन्धे पर लंगड़े को बिठा लो। लंगड़ा आँखों से रास्ता बतायेगा, तुम टाँगों से चलोगे। इस प्रकार बिना किसी अन्य की सहायता के तुम दोनों ही एक-दूसरे के पूरक बनकर आग की लपटों से बच सकोगे।

बस,मेरे मित्रो और माताओ ! इसी 'अन्ध-पंगु न्याय'के अनुसार कोरा भौतिकवाद अन्धा है और कोरा अध्यात्मवाद लंगड़ा है। इन दानों के सहचार से ही अशान्ति और सब प्रकार के अभाव रूप आग की लपटों से बचकर ही प्रभु पुत्र मानव भौतिक सुख और आत्मिक शान्ति प्राप्त कर सकता है। हाँ, एक सावधानी अवश्य वर्तनी होगी—अन्धे के कन्धे पर लंगड़े को बिठाना होगा, कहीं लंगड़े के कन्धे पर अन्धे को मत बिठा देना, नहीं तो बात बनेगी नहीं। क्या मतलब ? भौतिकता के कन्धे पर आध्यात्मिकता को प्रतिष्ठित करो, आध्यात्मिकता के कन्धे पर भौतिकता को नहीं लाद देना। सदैव आध्यात्मिकता को भौतिक सुखों की अपेक्षा अधिक महत्व दो, भौतिक सुख-सुविधाओं के लिए कभी आत्मा को न बेचो, आत्मपतन नहीं करो। रोटी-कपड़ा-मकान आदि भौतिक वस्तुयें आवश्यक हैं। हम इन्हें प्राप्त करें, इनकी प्राप्ति के लिये पूर्ण पुरुषार्थ करें, उनका उपभोग करें पर आत्म-पतन के मूल्य पर नहीं, नैतिक आदर्शों की होली या आत्म-हत्या करके नहीं। हम भूलें नहीं—शरीर आत्मा के लिये है, आत्मा शरीर के लिये नहीं। रोटी हमारे लिये हैं हम रोटी के लिये नहीं हैं। आत्मा स्वामी है, रईस है, उसे इन्द्रिय रूपी घोड़ों

CamScanner से स्कैन किया गया

का सईस या सेवक (गुलाम) मत बनाओ। अतः शारीरिक कष्ट सह-कर भी, भौतिक सुख-सुविधाओं की कीमत चुका कर भी हम आत्मिक-जीवन की, आत्म गौरव को, नैतिक आदर्शों की रक्षा करें—यही जीवन कला है।

मित्रो और माताओ ! स्पष्ट है कि जो दीखता है अर्थात् प्रकृति भी सत्य है, श्रेष्ठ है, उपयोगी है, और जो नहीं दीखता—अर्थात् आत्मा और परमात्मा भी सत्य हैं। तो ईश्वर, जीव और प्रकृति ये तीनों सत्य-शाश्वत और अनादि सत्तायें हैं।

हम भूलें नहीं कि तीन के बिना कहीं भी कोई खेल बनता नहीं है। हम किसी विद्यालय में जायें। १. अध्यापक या आचार्य २. विद्यार्थी और ३. विद्यालय भवन एवं अन्य आवश्यक वस्तुयें—पुस्तकें, कापी, पैन, ब्लैक बोर्ड, चाँक आदि चाहिए। यहाँ अध्यापक और विद्यार्थी दो चेतन सत्तायें हैं, अन्य वस्तुयें भौतिक हैं। हम किसी व्यापार कार्य को देखें यहाँ भी तीन की आवश्यकता है। १. दूकानदार हो, २. ग्राहक हो ३. दुकान में विक्रय के लिए आवश्यक वस्तु चाहिए, यहाँ भी दो चेतन सत्तायें हैं और एक भौतिक सत्ता है। इन तीनों में से एक भी न हो तो व्यापार का खेल नहीं बनता। विश्व-व्यापार का खेल भी बिना तीन के नहीं बनता। १. इदं सर्वम्—यह भौतिक विश्व जगत् २. उसके भोगने वाला जीवात्मा ३. और "यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद् राजा जगतो बभूव" इन दोनों का अधिष्ठाता महिमामय परमात्मा। आयें हम यहाँ इनके अस्तित्व के विषय में अति संक्षेप से विचार करें।

यह जड़ प्रकृति और उससे बने शरीर-इन्द्रियाँ तथा अन्य भौतिक पदार्थ तो प्रत्यक्ष ही हैं। प्रत्यक्ष का अपलाप कैसे ?

हाँ, यह ठीक है कि शरीर और अन्य भौतिक पदार्थ परिवर्तन शील (Trans Terable) और क्षणभङ्गुर हैं। कवि ने इनकी क्षण-भंगुरता को लक्ष्य करके ही कहा है—

CamScanner से स्कैन किया गया

क्षणभङ्गुर जीवन की कलिका कल प्रात को जाने खिली न खिली।
मलयाचल सेवित शीतल मन्द-सुगन्ध समीर चली न चली॥
कर काल कुठार लिये फिरता, तन नम्र है चोट झिली न झिली।
भजले प्रभु नाम अरी रसना, पुनि अन्त समय में हिली न हिली॥

—तो यह शरीर और जगत् क्षण भङ्गुर तो हैं पर असत्-मिथ्या (False) नहीं। इस शरीर द्वारा संसारी जनों के साथ किये गये हमारे व्यवहार ही कर्मफल के रूप में हमारे भावी जीवन की भूमिका बनाते हैं फिर ये असत्य कैसे? आप में से जो विज्ञान के विद्यार्थी हैं, वे जानते हैं कि विज्ञान का एक सिद्धान्त है–'Matter is indestructible' अर्थात् पदार्थ अविनश्वर है।

कोई पदार्थ कभी नष्ट नहीं होता। जिन अणुओं और परमाणुओं से कोई वस्तु बनती है वह रूपान्तरित होकर उनमें मिल जाती है, नष्ट नहीं होती। तो प्रकृति सत् है, सदैव रहने वाली है।

जीवात्मा—हमारा अपना आपा यद्यपि हमें दीखता नहीं है, किन्तु उसका आभास सभी करते हैं। प्रथम तो जब हम कहते हैं कि मेरा शरीर, मेरी आँख, मेरे कान, मेरे हाथ आदि तो प्रकट है कि शरीर और उसके अवयव आंख, कान, नाक आदि अलग वस्तुयें हैं जिन्हें हम देखते है और 'मैं' यह कोई अलग सत्ता है जो सम्पूर्ण शरीर में व्यापक होकर सम्पूर्ण शरीर को गति देती है। यही वह चेतन सत्ता है जो जड़ शरीर को गतिमान् रखती है और जिसके शरीर से प्रस्थान करने पर इन्द्रियों के गोलक बने रहने पर भी वे सभी निष्क्रिय और निरर्थक हो जाते हैं। बचपन, जवानी और बुढ़ापे के सभी परिवर्तन शरीर में ही होते हैं, आत्मा में नहीं। यह आत्मा अजर-अमर-अनादि नित्य और शाश्वत सत्ता है। महान् योगेश्वर महाराज कृष्ण गीता में इसी सत्य की पुष्टि करते हुए अर्जुन को उपदेश करते हैं :—

CamScanner से स्कैन किया गया

न जायते म्रियते वा कदाचन, नायं भूत्वा भविता वान् भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥

आगे एक सुन्दर उपमा देते हुए महाराज कहते हैं—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरो पराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा नन्यानि संयाति नबानि देही॥

अर्थात् जैसे पुराने वस्त्रों को त्यागकर मनुष्य नये वस्त्रों को धारण करता है, वैसे ही आत्मा पुराने शरीर रूपी वस्त्रों को त्याग-कर नये शरीरों को प्राप्त करता है।

आत्मा की सत्ता पर किञ्चित् विचार करने के पश्चात् अब हम इस कारण प्रकृति को इस अनुपम मनोरम संसार के रूप में बनाने वाले, इस अद्भुत् मानव देह का निर्माण करने वाले और शरीर में आत्मा को प्रतिष्ठित कर जीवन-ज्योति देने वाले जगत्पिता के अस्तित्व और महत्व के विषय में विचार करते हैं। मन्त्र में बताया है—'ईशावास्यं इदम सर्वम्' वह प्रभु सम्पूर्ण जड़-चेतन में समाया है, वह विश्व के कण-कण में रम रहा है।

अन्ति सन्तं न जहात्यन्ति सन्तं न पश्यति।
देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति॥ अथर्व० १०।८।३२।

वह प्रियतम प्रभु ही हमारो आत्मा का आधार है। हम उसे छोड़ना भी चाहें तो भी वह हमें एक क्षण को नहीं छोड़ता। हम उसे भुलाना चाहें तो भी वह हमें एक क्षण के लिए नहीं भुलाता। वह हमें सब ओर से घेरे हुए है, वह हमारे सबसे अधिक निकट है—इसी कारण तो वह हमें नहीं दीखता, जैसे आँख का सुरमा। प्यारे! उसे देखना ही चाहते हो तो आओ, सृष्टि के कण-कण में उसकी छवि का दर्शन करो। यह अखिल विश्व ब्रह्माण्ड उस प्रभु का सरस काव्य है। वस्तुतः उसके काव्य अर्थात् गुण-कर्म-कौशल का देखना ही तो उसको देखना है। उसका साक्षात्कार है।

CamScanner से स्कैन किया गया

यस्ये से हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रः रसया सहाहुः ।
यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहुः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

बर्फानी ये ऊँचे पर्वत जिसकी महिमा गाते है ।
ये समुद्र भी उछल-उछल कर गण जिसका बतलाते हैं ॥
चित्र-विचित्र दिशायें जिसकी महिमा का करती हैं गान,
दशों दिशायें जिस विराट् की हैं बलशाली भुजा समान,
भक्ति भाव की भेंट लेकर उन चरणों तक जाते हैं,
श्रद्धा पूर्वक सुख सागर के आगे शीश झुकाते हैं ।

महाकवि 'प्रसाद' जी कैसे भावनामय शब्दों में उस प्रियतम की बांकी झाँकी प्रस्तुत करते हैं—

विमल इन्दु की विशाल किरणें प्रकाश तेरा बता रही हैं,
महान् महिमा की तेरी माया जगत् की लीला बता रही है ।
तेरी दया का विस्तार कितना जो देखना हो तो देखें सागर ।
तेरी ही महिमा का गान प्यारे तरङ्ग मालायें गा रही हैं,
तेरी हो स्मिति जिसे निरखनी तो देखे शोभनतम चन्द्रिकाको ।
तेरी ही हँसने की धुन में नदियाँ निनाद करतो ही जा रही हैं,

पं० रामनरेश त्रिपाठी ने अपने एक प्रसिद्ध गीत में उस मनीषी कवि के काव्य की मनोहरी छटा प्रस्तुत की है :—

हे मेरे प्रभु ! व्याप्त हो रही है तेरी छवि त्रिभुवन में,
तेरी ही छवि का विकास है, कवि की वाणी में, मन में ।
माता के निःस्वार्थ नेह में, प्रेममयी की माया में,
बालक के कोमल अधरों पर, मधुर हास्य की छाया में ॥
पतिव्रता नारी के बल में, वृद्धों के लोलुप मन में,
होनहार युवकों के निर्मल ब्रह्मचर्यमय यौवन में,
तृण की लघुता में पर्वत की गर्व भरी गौरवता में,
तेरी ही छवि का विकास है, रजनी की नीरवता में,

CamScanner से स्कैन किया गया

ऊषा के चञ्चल समीर में खेतों में खलिहानों में,
गाते हुए गीत सुख-दुःख के सरल स्वभाव किसानों में,
× × ×
मुग्ध मोर के सरस नृत्य में कोयल के पञ्चम स्वर में।
तेरी ही छवि का विकास है सन्ध्या के सङ्कीर्तन में॥ हे मेरे प्रभु०

प्रिय बन्धुओ और माताओ ! कहाँ नहीं है उसकी छवि ! दूर न जाकर आयें हम तनिक अपनी शरीर रचना पर ही विचार करें—

केन पार्ष्णी आभृते पूरुषस्य केन मांसं सम्भृतं केन गुल्फौ।
केनाङ्गुलीः पेशानीः केन खानि केनोच्छलङ्घौ मध्यतः कः
प्रतिष्ठाम् ॥ अथर्व० १०।२।१

कौन है वह जिसने मनुष्य की एड़ियाँ बाहिर को उभारीं ? उनके ऊपर माँस किसने जमाया ? टखने किसने इधर-उधर रखे ? (समस्त शरीर में से पसीना आदि मल द्वारा दूर करने के लिये) रोमछिद्र किसने बनाये ? जोड़ों सहित अँगुलियाँ किसने बनाई ? तलवे किसने बनाये ? दोनों एड़ी और तलवों के बीच खड़े होने की हड्डी किसने रखी है ?

को अस्मै वासं पर्यदधात् को अस्या युरकल्पयत्।
बलं को अस्मै प्रायच्छत् को अस्या कल्पयज्जनम्॥
—अथर्व० १०-२-१५

कौन है वह जिसने इस शरीर पर खाल रूप आच्छादन वस्त्र पहनाया ? इसकी आयु किसने कल्पित की, इसमें जीवन किसने डाला ? इसके लिये बल किसने दिया और इसके अन्दर कार्य करने का साहस तथा गमन-शीलता को किसने निश्चित किया ? उस महान् कवि के काव्य पर दूर तक विचार करते जाइये, अन्त में 'कामायनी' की श्रद्धा के शब्दों में मानना ही पड़ता है—

हे विराट् ! हे विश्वदेव ! तुम कुछ हो ऐसा होता भान।
धीर गम्भीर शान्त स्वर संयुत यही कर रहा सागर गान॥

आखिर जब कला है तो कलाकार है, रचना है तो रचयिता

CamScanner से स्कैन किया गया

सुनिश्चित है, नियम है तो नियामक और व्यवस्था है तो व्यवस्थापक मानना ही होगा। एक नास्तिक से किसी ने प्रश्न किया कि तुम इस संसार को क्या समझते हो ? उसका उत्तर था—The world is an Organised matter अर्थात् संसार एक व्यवस्थित माद्दे का नाम है। नास्तिक अपने ही उत्तर से पकड़ में आ चुका था, जब **व्यवस्थित** माद्दे का नाम संसार है तो **व्यवस्थापक** होना ही चाहिये।

हमारे कुछ मित्रों का विचार है कि विभिन्न मात्रा में पंचभूतों के मिलने से, अणुओं और परमाणुओं के मिलने से स्वतः ही सृष्टि बन जाती है, उसके निर्माता की कोई आवश्यकता नहीं। एक पिता और पुत्र के बीच भी इस विषय में मतभेद था। पुत्र आस्तिक था और पिता था नास्तिक। एक दिन पिता के बाहर होने पर पुत्र ने पिता की अनुपस्थिति में कमरे की सामने की दीवाल पर मेज पर रखी रंगों की डिब्बों से विभिन्न रंग लेकर बड़ा आकर्षक फूल बना दिया। पिता ने जब कमरे में प्रवेश किया तो उसकी दृष्टि स्वभावतः उस आकर्षक रङ्ग-बिरङ्गे फूल पर पड़ी। वह हर्षित हुआ, पुत्र को बुला-कर पूछने लगा—वत्स ! यह सुन्दर पुष्प किसने बनाया है ? पुत्र ने आश्चर्य की मुद्रा में इधर-उधर देखने के पश्चात् एक दृष्टि पिता की मेज पर डाली और उस पर रखी रंग की डिब्बी को लक्ष्य कर सहज भाव से बोला—'पिताजी, ऐसा लगता है कि डिब्बी के रंगों के परमाणु उछल २ कर गये होंगे और उन्होंने इस सुन्दर फूल का निर्माण किया होगा। पिता ने थोड़े आक्राश के साथ कहा—"बेटा तुम कैसी मूर्खों जैसी निरर्थक बातें करते हो। भला यह रंग तो जड़ हैं। वे बिना किसी चेतन सत्ता के उठाये अपने स्थान से कैसे हिल सकते हैं, फिर ये सभी भिन्न-भिन्न मात्रा में दीवाल पर कैसे लग सकते हैं ? बिना किसी चेतन प्राणी के यह कदापि सम्भव नहीं हैं।

पुत्र ने विनय भरी वाणी में कहा—पिताजी ! क्षमा करें, जब यह एक छोटा सा फूल बिना किसी चेतन सत्ता के नहीं बन सकता तो

CamScanner से स्कैन किया गया

अनेक प्रकार के रंग-विरंगे पुष्प, विविध भाँति के रसीले फल वनस्पतियाँ-औषधियाँ, अन्न और मेवे, भाँति-भाँति के पशु-पक्षी और नाना विध नस-नाड़ियों से संयुत यह दिव्य मानव शरीर बिना किसी महान् चेतन सत्ता के केवल पञ्चभूतों द्वारा स्वयं ही कैसे बन सकता है ? मित्रो ! उस पिता का अज्ञान-जनित भ्रम तो दूर हो गया था, पता नहीं आप में से किसी के मन में अभी भी कोई शङ्का शेष बची है क्या ?

शायद आप यहाँ एक प्रश्न करें कि यदि ईश्वर है तो वह हमें दिखाई क्यों नहीं देता ? सुनिये ! दो मित्र थे। एक का कहना था कि हम तो उसी चीज का अस्तित्व मानते है जो आँखों से दीखती है। एक दिन उसके पेट में दर्द हो गया। वह दूसरे को कहने लगा—आज मेरे पेट में दर्द है, मैं आज विद्यालय नहीं जाऊंगा। आस्तिक मित्र कहने लगा यदि तुम्हें विद्यालय नहीं जाना हो तो वैसे ही न जाओ, बहाना क्यों बनाते हो कि दर्द हो रहा है। नास्तिक मित्र ने कहा—मुझे इतने तेज दर्द का अनुभव हो रहा है कि मैं मरा जा रहा हूं और तुम्हें मजाक सूझ रहा है। आस्तिक बोला कैसे मान लूं कि तुम्हें दर्द है, यदि है तो दिखाओ न ? तुम्हीं ने कहा था न कि जो वस्तु आँखों से नहीं दिखाई देती है, मैं उसे नहीं मानता। अब तो तुम मानोगे कि कि आँख से न दीखने वाली वस्तु का भी अस्तित्व होता है।

अच्छा हमारे प्रवचन के शब्दों का अस्तित्व मानते हो या नहीं ? आप कहेंगे, मानते हैं। तब क्या आप इन शब्दों को आँख से देखते हैं ? आप कहेंगे—नहीं देखते। पर आप देखते तो हैं। शब्द को आप आँख से नहीं कान से देखते हैं। जब कोई गृहिणी कहती है—दूध में मीठा कैसा है या दाल में नमक कैसा है तो क्या आप आंख में डालकर देखते हैं ? नही, इन्हें जिह्वा से देखते हैं। दुर्गन्धि और सुगन्धि भी आप आँख से नहीं देखते, इसे आप नाक से देखते हैं। भूख-प्यास और सुख-दुख भी आप अनुभव करते हैं, पर आँख से नहीं।

CamScanner से स्कैन किया गया

मित्रो ! रूप केवल आँख का विषय है, उसे ही हम आँख से देख सकते हैं, शब्द कान का, गन्ध-नाक का, रस-रसना का और स्पर्श त्वचा का विषय है, पर परमात्मा तो इन्द्रियातीत है, अतः हम उसे किसी इन्द्रिय से यहाँ तक कि मन और बुद्धि से भी नहीं देख सकते। वह प्रियतम केवल आत्मा का विषय है। निर्मल, निरावरण, अचञ्चल आत्मा में ही प्रभु की बाँकी झाँकी होती है।

यहाँ आप एक प्रश्न और भी कर सकते हैं कि हमने परमात्मा के अस्तित्व को तो मान लिया पर बिना हाथों के वह संसार को बना कैसे सकता है ? मित्रो और माताओ ! याद रखिये कि हाथ की जरूरत अपने से बाहर की वस्तु के लिये पड़ती है। जैसे हमें पुस्तक उठाना हो तो हाथ से उठायेंगे पर यदि हाथ को ही उठाना हो तो क्या दूसरे हाथ से उठायेंगे ? हम जब सिर हिलाते हैं, आंखे खोलते या बन्द करते हैं, नाक से छींकते हैं, पैरों से चलते हैं, मन से संकल्प-विकल्प करते हैं, बुद्धि से विचारते हैं तो यह सब हम बिना हाथ के ही करते हैं क्योंकि हमारे शरीर में व्याप्त आत्मा इन अवयवों में गति प्रदान करता है, वह इन सब अवयवों में समाया है। वैसे ही परम पिता परमात्मा सम्पूर्ण सृष्टि में समाया है। उसे सृष्टि निर्माण में हाथ आदि किसी भी बाहरी अवयव की आवश्यकता नहीं 'ईशावास्य मिदं सर्वम्" इस पद द्वारा वेद माता ईश्वर की इसी सर्व व्यापकता, सर्वशक्तिमत्ता, सर्वज्ञता और निराकार होने का प्रतिपादन करती है।

माताओ और सज्जनो ! तो यहाँ तक के चिन्तन से हमें स्पष्ट हुआ कि प्रकृति, जीवात्मा और परमात्मा यह तीनों शाश्वत सत्तायें हैं। इन तीन के बिना विश्व का खेल नहीं बन सकता। अब हम संक्षेप से यह विचार करेंगे कि इन तीनों में अन्तर क्या है ? ये तीनों परस्पर किस प्रकार सम्बद्ध हैं और किस प्रकार परस्पर उपयोगी हैं ?

यह तीनों ही सत्तायें सत् हैं। इन तीनों में से प्रकृति में केवल यह एक ही विशेषता है कि वह सत् है—सदैव रहने वाली है।

CamScanner से स्कैन किया गया

जीवात्मा में एक और विशेषता है, वह सत् के साथ ही चित् भी है—जीवात्मा सत्+चित्=सच्चित् है। उसमें चैतन्यता है—इच्छा-द्वेष, ज्ञान-प्रयत्न और सुख-दुःख की अनुभूति करना उसकी विशेषतायें हैं। परमात्मा में जीवात्मा स भी एक और विशेषता है, वह सच्चित् के साथ आनन्द स्वरूप भा है—वह सच्चित्+आनन्द=सच्चिदानन्द-स्वरूप है।

ओं उद्वयं तमसस्परिस्वः पश्यन्त उत्तरम्।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योति रुत्तमम्॥ यजु० ३३'५४॥

वैदिक संन्ध्या के उपस्थान मन्त्रों में इस प्रथम मन्त्र मे ईश्वर जीवात्मा, और प्रकृति के इस अन्तर को बड़े सुन्दर रूप में निरूपित किया गया है। मन्त्र में तीन शब्द हैं—उत्, उत्तरम् उत्तरम् और उत्तमम्। प्रकृत्ति उत् है, श्रेष्ठ है, जीवात्मा—उत्तरम्, श्रेष्ठतर है और परमात्मा उत्तमम्—श्रेष्ठतम है। प्रकृति good, जीवात्मा better और परमात्मा best है।

हाँ, यह प्रकृति भी श्रेष्ठ है–हेय नहीं है जैसा कि कुछ चिन्तकों ने 'माया महा ठगिनी' बताकर इसकी निन्दा की है। कितनी मनोरम, कितनी सुहावनी है—प्रभु की यह सृष्टि—इसी के माध्यम से, जगत् के माध्यम से ही जोवात्मा जगत्-पति को प्राप्त कर सकेगा, अन्य कोई मार्ग नहीं है। पर हम यह नहीं भूले कि जीवात्मा प्रकृति से बहुत श्रेष्ठ है। वह चैतन्य सत्ता है। वह प्रभु का अमृत पुत्र है। हाँ, अपने पिता परमात्मा से एक न्यूनता है, उसमें। आनन्द का अभाव है।' जीवात्मा में। इसे आनन्द चाहिए—शान्ति चाहिए। इसलिये हम देखते हैं कि हर मानवात्मा को शान्ति या आनन्द की तलाश है। प्रत्येक चाहता है उसे सुख-शान्ति और आनन्द मिले। पर यह आनन्द मिलेगा कहां? हमें कपड़ा चाहिए और हम पंसारी की दुकान पर जाकर कहें कि हमें इतना मीटर अमुक कपड़ा दे दो तो वह हँसेगा हमारे पागलपन पर। कहेगा—भोले भाई कपड़ा तो

CamScanner से स्कैन किया गया

बजाज की दुकान पर मिलेगा। वह पड़ौस में ही दुकान है, वहाँ से ले क्यों नहीं लेते ? इसी प्रकार वस्त्र विक्रेता की दुकान पर जाकर छुआरा-किसमिश या गोला-बादाम चाहें तो वह भी कहेगा कि भाँग छान कर तो नहीं आये ? यह वस्तुयें तो पंसारी की दुकान से मिलेंगी। प्रकट है कि जो वस्तु जिसके पास है, वह उसीसे प्राप्त होगी। तो आनन्द या शान्ति तो आनन्दघन परमात्मा के पास है। वह केवल उसी की चरण-शरण में आकर मिलेगी। 'यस्यच्छायाऽमृतं' उसका आश्रय ही अमृत है, आनन्द-दायक है, मोक्ष-दायक है।

मित्रो और माताओ ! अब एक और कल्पना कीजिये। तीन व्यक्ति हैं—उनमें से एक के पास एक कम्बल है, दूसरे के पास ३ कम्बल हैं और तीसरे के पास कोई कम्बल नहीं है। शीत ऋतु आगई। एक कम्बल वाले को शीत सताने लगा। उसे विचार हुआ कि यदि उसे एक कम्बल और मिल जावे तो उसके शीत का निवारण हो सकेगा। अब आप विचारिये कि उसे किसके पास जाना चाहिए ? निश्चय ही यदि वह तीन कम्बल वाले के पास जायेगा, उससे याचना करेगा तो सम्भव है उसकी दया-मया जगे, वह उसे एक कम्बल दे दे और उसके शीत का निवारण हो जावे। पर बुद्धि का मारा यदि वह उसके पास पहुंच गया जिसके पास कोई कम्बल नहीं है तो वह ठठाकर हँसेगा, कहेगा—बड़े ठीक मौके से आये हो। मुझे आधा कम्बल अपने में से दे दो। सच में हमारे वे भाई-बहिन कितने भोले हैं जो प्रकृति से अथवा जड़ पदार्थों से शान्ति या आनन्द चाहते हैं। क्या आपने नहीं देखा, हमारे कितने ही भाई-बहिन हैं जो तुलसी या पीपल के चारों ओर घूमकर परिक्रमा करते हैं, कितने हैं जो गोवर्धन आदि पहाड़ों के चारों ओर चक्कर काटते हैं। पर निश्चय ही वे जड़ की उपासना से जड़ मति ही बन जाते हैं। आधा कम्बल और दे डालने की भांति वे अपनी गांठ की चैतन्यता भी इस जड़ोपासना से गँवा बैठते हैं। ईश्वर के स्थान पर मूर्तिपूजा आदि जड़ोपासना के पीछे हमारे महान् राष्ट्र के घोर पतन की बड़ी लम्बी दर्द भरी कहानी छिपी है।

CamScanner से स्कैन किया गया

मित्रो और माताओ ! आज भी संसार का अधिक भाग ईश्वर को मानता तो है, पर उसे जानता नहीं। ईश्वर को सर्व व्यापक के स्थान पर एक देशीय मानकर—चौथे आसमान-सातवें आसमान या क्षीर सागर में शयन करने वाला मानकर, इसी प्रकार परमात्मा को न्यायकारी के स्थान पर नाम जप 'भोग प्रसाद' गंगा-यमुना स्नान या तीर्थाटन की रिश्वत लेने वाला मानकर अथवा अजन्मा और निराकार के स्थान पर साकार और माता के गर्भ से जन्म लेने वाला मानकर हम निष्पाप और पवित्र बनना तो दूर ईश्वर को न मानने वालों से भी अधिक पापी और अपवित्र बन जाते हैं। इसलिये हम देख रहे हैं कि एक ओर आज अखण्ड कीर्त्तनों, मठ-मन्दिरों तथा गुरुओं और अवतारों की बाढ़ आई हुई है तो दूसरी ओर उसी अनुपात में दुराचार-भ्रष्टाचार बढ़ रहा है। इसीलिए आवश्यक है कि हम ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास करने के साथ ही ईश्वर के वेदोक्त सत्यस्वरूप से भी परिचित हों।* यहाँ हम मन्त्र में वर्णित ईश्वर की सर्वव्यापकता में दृढ़ विश्वास किस प्रकार हमें निष्पाप और पवित्र बनाता है इस बिन्दु पर एक सरल कथा की सहायता से विचार करने लगे हैं।

एक गुरु के दो शिष्य थे। एक ईश्वर को सर्वव्यापी मानता था जबकि दूसरा गुरुजी के उपदेश के बाद भी कुतर्क द्वारा एक देशीय मानता था। एक दिन गुरुजो ने समझाया कि यदि हम ईश्वर को सर्वव्यापक नहीं मानेंगे तो पाप से नहीं बच सकते। पर दूसरे शिष्य ने कहा—मैं कभी पाप नहीं कर सकता। कुछ दिनों बाद गुरु जी ने दोनों शिष्यों को कागज की एक-एक चिड़िया दी और कहा कि ऐसा जगह इसकी गर्दन तोड़ लाओ जहाँ कोई न देख सके। दूसरा शिष्य एक झाड़ी के पीछे गया और इधर-उधर देखकर समझा कि कोई नहीं

---

* ईश्वर कृपा हुई तो हम भगवान् के स्वरूप और उसकी महिमा के सम्बन्ध में कुछ विस्तार से वेद मन्त्रों के आधार पर एक पृथक् ग्रन्थ शुद्ध 'भागवत कथा' में विचार करेंगे।

CamScanner से स्कैन किया गया

देख रहा। बस वह चिड़िया की गर्दन तोड़ लाया, जबकि पहला शिष्य उस झाड़ी के पीछे भी गया, समीप की एक झाड़ी और नदी तीर पर भी गया। एक गुफा में भी वह गया। पर उसे निरन्तर याद आता रहा—'ईशावास्यमिद् सर्वम्' 'सहस्र शीर्षा: पुरुष: सहस्राक्ष: सहस्रपाद' वह मेरा प्रियतम सर्व व्यापक है, वह प्रभु हजारों नेत्रों वाला अर्थात् सर्वद्रष्टा है। अत: वह चिड़िया बिना गर्दन तोड़े ही वापस ले आया। प्रकट है प्रभु की सर्वव्यापकता में दृढ़ और गहन विश्वास ही हमें निष्पाप और पवित्र बना सकता है।

यहाँ तक हमने ईश्वर, जीव और प्रकृति इन तीनों अनादि सत्ताओं के अस्तित्व और उनके स्वरूप पर संक्षेप से विचार किया अब हम इन तीनों के परस्पर सम्बन्ध और उस सम्बन्ध जन्य उपयोगिता पर विचार करेंगे।

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाय: समानं वृक्षं परिषस्व जाते।
तयोरन्यं पिप्पलं स्वादवत्यश्नन् नन्यो अभिचाकशीति॥

इस मन्त्र में एक सुन्दर अलङ्कार द्वारा वेद माता ने इस शाश्वत सम्बन्ध पर प्रकाश डाला है।

प्रकृति रूप एक ही वृक्ष पर दो उत्तम कर्मा शाश्वत मित्र आत्मा और परमात्मा बसे हैं। उन दोनों में से एक जीवात्मा इस प्रकृति के स्वादु फलों को खाता है जबकि दूसरा परमात्मा केवल साक्षी होकर देखता है।

ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, दयालु अजन्मा, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर-अमर, अभय, नित्य, पवित्र, और सृष्टिकर्त्ता है। ईश्वर एक है, जीवात्मा अनेक हैं, ईश्वर सर्वज्ञ है—जीवात्मा अल्पज्ञ। ईश्वर विभु है—जीवात्मा अणु। यह ईश्वर और जीव (नर-नारायण) में भेद है। पर जीवात्मा की शक्ति-सामर्थ्य भी अनुपम है। उसका बुद्धि-वैभव भी अनूठा है।

CamScanner से स्कैन किया गया

ऐ मेरे आत्मन् ! तू अपने आत्म-गौरव को पहिचान। ऐसा शक्तिशाली परमात्मा 'स नो बन्धु जनिता०' तेरा बन्धु है, पिता है और है—'सयुजा सखायः' घनिष्ट मित्र। अपने इस सखा को आदर्श बनाकर तू प्रकृति के फलों को कर्मानुसार भोग अवश्य, पर उनमें आसक्त न हो 'त्यक्तेन भुञ्जीथाः' उसके द्वारा प्रदत्त भोग को त्याग-पूर्वक (संयम पूर्वक) भोग। संयमः खलु जीवनन्। संयम ही जीवन है और यही है जीवन-कला।

जीवात्मा एक यात्री है। उसकी यात्रा का लक्ष्य है आनन्द-स्रोत, शान्ति धाम परमात्मा की प्राप्ति। पर यात्रा के लिये साधन तो चाहिये। यह शरीर, यह इन्द्रियाँ, यह धन-वैभव यह सम्पूर्ण प्रकृति और प्रकृति जन्य पदार्थ ये सब जीवात्मा की यात्रा के साधन हैं। कठोपनिषद के ऋषि ने बताया था—

आत्मानं रथिनं बिद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धि तु सारथि बिद्धि मनः प्रग्रहमेव च॥
इन्द्रियाणि हयानाहु विषयांस्तेषु गोचरान्।
आत्मेन्द्रिय मनो युक्तं भोक्तेत्याहु र्मनीषिणः॥

तो यह शरीर और इन्द्रियाँ, यह बुद्धि और मन सभी साधन हैं, रथी-आत्मा को उसके लक्ष्य—प्रियतम प्रभु तक पहुंचाने का! यह हमारा शरीर 'दैवी नावं' दैवी नौका है। इस भव सागर से पार कर प्रभु की गोद में पहुंचाने का सुदिव्य साधन है। इसी प्रकार हमारा परिवार, हमारा समाज, हमारा राष्ट्र और प्रभु का प्यारा यह सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्ड ये सब हमें हमारी यात्रा के लक्ष्य तक पहुंचाने में अत्यधिक सहायक हैं। ये यात्रा के विभिन्न पड़ाव हैं—विश्राम स्थल हैं—यात्री (जीवात्मा) को नूतन सम्बल और शक्ति देने वाले संसार के विविध कर्त्तव्य कर्म जीवात्मा के बन्धन का कारण नहीं, वे मोक्ष मार्ग को प्रशस्त करते हैं। पर वे बन्धन बन जाते हैं—कब ? जब हम साधन को ही साध्य मान बैठते हैं। नाम साधन है,

CamScanner से स्कैन किया गया

नदी पार कर किनारे तक पहुंचने के लिये। पर हम नाव की सुन्दरता पर रीझकर उसी में बैठे रहें, उसमें हमारी आसक्ति हो जाय तो वह नाव हमारे लिए पार उतारने वाली नहीं, बन्धन बन गई। प्रकट है कि दोष नाव का नहीं, हमारी अमक्ति का है। दोष संसार का नहीं—वह हमें उपभोग के लिए मिला है। साधन रूप में उपयोग के लिये मिला है। हम उसका उपभोग करें, उपयोग करें। पर वेदमाता के सन्देश को याद रखें—"त्यक्तेन भुञ्जीथाः" नाव हमें मिली है छोड़ने के लिये—इस भाव से भोगें, अधिकार सीमा में भोगें। त्याग-पूर्वक भोगें। त्याग और भोग का यह समन्वय ही जीवन जीने को कला है। हमारा भोग हा योग रूप बन जाये, यज्ञ बन जाये। यह तत्व ज्ञान वेद माता ही हमें बतातो है। यह कैसे हो ? इसका हम आगामी दिनों के कथा-क्रम में विचार करेंगे।

वाटिका में हम गये। बड़े मनोरम, बड़े सुगन्धि युक्त गुलाब के पुष्प खिले थे। हमारा अन्तर्हृदय खिल उठा। तन-मन महक उठा। लगे हम माली का और उस विश्व माली का यशोगान करने। और इस प्रकार हम उस प्रियतम की प्राप्ति की राह पर एक चरण आगे बढ़ गये। हमारी वाटिका की सैर कितनी सार्थक हुई। वाटिका से जाते हुए हमने माली का धन्यवाद किया। हमारा चित्त कितना प्रफुल्लित है, हमारी भावनायें कितनो उदात्त हैं, हम अपने प्यारे के कितने निकट हैं ! पर एक दूसरी स्थिति है। फूलों के रूप और उसकी महक में हमें आसक्ति हो गई। माली की निगाह बचाकर हमने कुछ फूल तोड़कर जेब में रख लिये। वाटिका से बाहर जाते हुए हमारी तलाशी ली गई। पकड़े गये और अब हमारी दुर्गति की जा रही है।

यहाँ हम विचार करें कि हमारे इस बन्धन का कारण वाटिका नहीं हमारी आसक्ति है, हमारा लालच है, हमारी अनाधिकार चेष्टा है। वेद माँ ने अपने अमृत पुत्र मानव को जीवन कला सिखाते हुए उपदेश किया—मागृधः कस्य स्विद्धनम्। मेरे पुत्र ! लालच मत करो,

CamScanner से स्कैन किया गया

संयम को मत तोड़ो, किसी के अधिकार को मत छीनो। और एक बात और यह ध्यान रखो कि जो भी तुम्हारे पास—विद्या, बल, धन, ऐश्वर्य है वह तुम्हारा नहीं—'कस्य स्विद्धनम्' वह सुख स्वरूप परमात्मा का है। अतः उसकी वस्तु उसके चरणों में समर्पित करते हुए एक प्रकार के अलौकिक सुख का अनुभव करते हुए कहो—

मेरा मुझ को कुछ नहीं जो कुछ है सो तोर।

तेरा तुझको सौंपते क्या लागे है मोर॥

'इदं न मम' यह मेरा नहीं, मेरे प्रभु का है—ऐसी भावना ही यज्ञ भावना है। 'अयं यज्ञो विश्वस्य नाभिः' यह यज्ञ भावना ही विश्व-चक्र की नाभि है। यह यज्ञ जीवन ही जीवन कला का रहस्य है। कैसे हम इस यज्ञ भावना को अपने निजी जीवन में प्रतिष्ठित करें, कैसे इस जीवन कला का हम अपने पारिवारिक सामाजिक राष्ट्रीय और वैश्व जीवन में उपयोग करें, जिससे श्रेष्ठ प्रकृति को साधन बना कर श्रेष्ठतर जीवात्मा अपने आत्म गौरव को पहिचान कर श्रेष्ठतम यज्ञरूप प्रभु का प्यार पाने की पात्रता अपने में ला सके, यह हम क्रमशः कथा के अगले चरणों में विचार करेंगे।

यहाँ हम इस निष्कर्ष के साथ आज की कथा को विराम देंगे कि ईश्वर जीव और प्रकृति इस त्रिक् के अस्तित्व, उसके स्वरूप और परस्पर के सम्बन्ध को जानकर ही ईश्वर की सत्ता को सर्वत्र देखता हुआ निष्पाप और पवित्र बनकर, प्रकृति को साधन बनाकर यह जीवात्मा उस साध्य परमात्मा को पा सकेगा, अपने जीवन लक्ष्य चिर शान्ति को प्राप्त कर सकेगा। वेद मां कहती है—भद्रं हि शर्म त्रिवरूथ मस्ति' इन तीनों के अस्तित्व में दृढ़ विश्वास और तदनुरूप व्यवहार ही एक मात्र शान्तिदायक है। यज्ञोपवीत की त्रिवेणी के अनेक त्रिक् में से एक त्रिक् है—ईश्वर जीव और प्रकृति के अस्तित्व और उनके सत्य स्वरूप में दृढ़ आस्था। इस 'त्रिक्' रूप 'त्रिवेणी का, संगम कर स्नान ही मानवात्मा को मोक्ष प्रदान करेगा।

CamScanner से स्कैन किया गया

यहाँ एक विन्दु और भी विचारणीय है। आम तौर से ईश्वर के अस्तित्व को मानने वाले को आस्तिक कहा जाता है, किन्तु भगवान् की कल्याणी वाणी वेद के अनुसार जो ईश्वर-जीव-प्रकृति तीनों के अस्तित्व को मानता है, वह आस्तिक है। आत्मा और परमात्मा को न मानकर केवल प्रकृति के अस्तित्व को मानने वाला तो नास्तिक है ही पर उससे भी बड़ा है वह जो परमात्मा को मानने का दम तो भरता है किन्तु परमात्मा की शाश्वत प्रजा जीव और उसकी सुन्दर रचना के उत्पादन कारण प्रकृति को नहीं मानता। जो ब्रह्म ब्रह्म तो चिल्लाता है किन्तु ब्रह्म की रचना को मिथ्या बताता है, उससे घृणा करता है, उसकी उपेक्षा करता है प्रभु निर्दिष्ट लौकिक कर्त्तव्य कर्मों से मुंह मोड़ता है, वह कायर है, महाराज कृष्ण के शब्दों में वह क्लीव है भगोड़ा है, दम्भी है। वह भूलता है कि यदि बिना कलाकार के कला की रचना असम्भव है तो बिना कलाकृति के कलाकार का भी क्या महत्व है? कलाकार की कला या रचना को मिथ्या बताने वाला प्रकारान्तर से कलाकार को ही मिथ्या बताने का पाप करता है। जो प्रभु के पुत्र-पुत्रियों को अनासक्त भाव से प्यार करता है, जो परिवार, राष्ट्र और विश्व को यज्ञ भावना के साथ प्यार करता है, वही विश्वपति का प्यार पाकर एक अलौकिक मुस्कान के साथ विश्व वाटिका से प्रस्थान करता है। उसी का जीवन धन्य है!

केवल और केवल वेद माता ही त्रैतवाद के इस दिव्य दर्शन का प्रतिपादन कर सच्ची आस्तिकता का झरना बहाती है, जिसके अभाव में प्रकृति की सम्पूर्ण हरियाली—उसका समस्त सौन्दर्य-विभव सूख जाता है, आत्मा का गौरव विनष्ट होकर उसकी गति कुण्ठित हो जाती है और परमात्मा भी निठल्ला, निकम्मा और निष्प्रयोजन बन जाता है, जब कि त्रैतवाद का यह दर्शन आस्तिकता का झरना जीवन और जगत् की सार्थकता को सींचता हुआ परमात्मा के अस्तित्व को महत्ता को शतगुणा कर देता है। ऐसी है वेद माता की महिमा! वन्दे वेद मातरम्।

CamScanner से स्कैन किया गया

तीसरा दिन—

जीवन कला [२]

जीवम यज्ञ : आत्म यज्ञ

मा प्रगाम पथो वयं मा यज्ञादिन्द्र सोमिनः।
मान्तः स्थुर्नो अरातयः। —ऋग्वेद

सामूहिक सङ्कीर्तन

मेरा सखा तो है वही जिसका कि ओम् नाम है।
सिर को झुका के प्रेम से ईश्वर तुम्हें प्रणाम है॥
सृष्टि बना के पालना, दाता है तेरे हाथ में।
करना प्रलय भी अन्त में, तेरा हो नाथ काम है॥
ऋतुयें बदल के आरहीं, नदियाँ सिन्धु में जारहीं।
शाम के बाद है सुबह, सुबह के बाद शाम है॥
सूरज समय पै ढल रहा, वायु नियम से चल रहा,
झुकता है शिर यह देखकर तेरा जो इन्तजाम है।
आता नजर नहीं मगर कण-कण में तू समा रहा।
जग में, जहाँ तू न हो, ऐसा न कोई धाम है॥
होता है न्याय सर्वदा ईश्वर तेरे दरबार में।
चलती नहीं सिफारिशें, चढ़ता न कोई दाम है॥
तेरे पदार्थ हैं प्रभो, पथिक सभी के वास्ते।
सबके लिये हैं वेद भी, जिसमें तेरा पैगाम है॥

मित्रो और माताओ ! युग पुरुष, आचार्य प्रवर आनन्दकन्द ऋषिराज दयानन्द के हमारे प्यारे भारत राष्ट्र, अखिल विश्व और माँ मानवता के प्रति असीम उपकार हैं। स्वदेश और स्वदेशी की

CamScanner से स्कैन किया गया

भावना मातृभूमि पितृभूमि ओर पुण्यभूमि भारत को स्वाधीनता, नारी शिक्षा, दलितोद्धार, अनाथ रक्षण, विधवा उद्धार, गोरक्षा, राष्ट्र-भाषा हिन्दी प्रचार आदि धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक सभी क्षेत्रों में महर्षि के एक-दो तो नहीं अगणित उपकार हैं। पर प्रश्न है—ऋषिराज दयानन्द का महत्तम—सबसे बड़ा उपकार क्या है ? यह है ऋषि का वेदोद्धार का कार्य। युगों-युगों के बाद परमेश प्रभु की कल्याणी वाणी वेद माता का पावन सन्देश सुनने-सुनाने का यह सौभाग्य उसी वेदों वाले ऋषि की कृपा से हमें मिल रहा है, जिस प्यारे ऋषि ने पुण्यमयी व्यवस्था दी आप सब भी दुहरायें—'वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।'

मित्रो ! वेद तो मीठी रोटी है। उसका कौनसा भाग अधिक मीठा है, कौनसा कम यह कहना सम्भव नहीं है। उसका तो प्रत्येक भाग ही मीठा है। पवित्र वेदों के लगभग २० हजार मन्त्रों में से हर मन्त्र मीठा है, बहुत मीठा है। आवश्यकता है हम तनिक मन्त्र की गहराइयों में प्रवेश करें। आयें, आज हम एक वेद मन्त्र पर कुछ चिन्तन करने का यत्न करें। मन्त्र है—

ओं मा प्रगाम पथो वयं मा यज्ञादिन्द्र सोमिनः।
मान्तः स्थुर्नो अरातयः॥

कुछ सज्जनों ने यह भ्रान्ति उत्पन्न की हुई है कि वेद बहुत कठिन हैं। पर शायद वे भूल जाते हैं कि वे हमारी माँ की वाणी है, विश्वधात्री माँ की। माँ की वाणी कठिन अगम्य और दुर्बोध क्यों कर हो सकती है ? देखिये कितने सरल शब्दों में एक वैदिक भक्त प्रभु चरणों में विनय करता है—

हे देवाधिदेव प्रियतम प्रभो ! (वयं पथः) हम मार्ग से (मा प्रगाम) पीछे नहीं लौटें। भगवान् कहते हैं—(सोमिनः) शान्ति के

CamScanner से स्कैन किया गया

अभिलाषी ! (मा यज्ञात्) तू यज्ञ से परे नहीं हो, यज्ञशील बन। (मा अन्तः स्थुः अरातयः) तथा अपने अन्तर्हृदय में अदानताओं को, मत बसा।

मित्रो और माताओ ! आयें हम थोड़ा सा मंत्र की गहराइयों में प्रवेश करें। मन्त्र के तीन पद या चरण हैं। मा प्रगाम पथो वयं। मा यज्ञादिन्द्र सोमिनः। मान्तः स्थुर्नो अरातयः। पहले चरण में जीवात्मा अपनी समस्या लेकर अपने प्यारे प्रभु के चरणों में उपस्थित हुआ है। मन्त्र के दूसरे पद में भगवान् उस समस्या का बड़ा सरल-सरस समाधान देते हैं।

प्रिय बन्धुओ ! किसी ने गिनती तो की नहीं है, और सच में तो योनियाँ असंख्य हैं, पर सुनते आये हैं कि ८४ लाख योनियाँ हैं। इनमें (८३९९९९९) तिरासी लाख निन्यानवे हजार नौ सौ निन्यानवे योनियाँ तो मात्र भोग योनियां हैं। केवल और केवल मानव योनि ही ऐसी है जिसमें जीवात्मा कर्मानुसार फल भोगने के साथ ही नूतन कर्मानुष्ठान भी कर सकता है, जिससे वह इस योनिचक्र से निकलकर जीवन के चरम लक्ष्य—चिर शान्ति या मोक्ष को प्राप्त कर सकें। कवि ने ठीक ही लिखा है—'राही तू अनन्त का राही।' कितने लम्बे योनिचक्र को पार करता हुआ यह यात्री आत्मा इस मानव देह में आया है, कितनी लम्बी यात्रा उसने तय की है। न जाने कितने प्रकार के पशु-पक्षियों, कीट-पतङ्गों की योनियों को उसने भोगा है। एक अन्धा था। एक बार उसे एक अँधेरे महल में बन्द होना पड़ा। इस महल के ८४ लाख दरवाजे थे। इनमें से केवल एक दरवाजा खुला था, उसीसे प्रकाश भी आता था। शेष सभी दरवाजे बन्द थे। अन्धा इस विचित्र महल से बाहर निकलने को व्याकुल था। एक दरवाजा है, जिससे वह इस अंधेरे महल से बाहर हो सकता है, यह उसे ज्ञान था या उसे बता दिया गया था। यह बेचारा हाथ से टटोलते २ आगे बढ़ रहा था ताकि खुले दरवाजे से बाहर हो सके। पर कैसा विचित्र दुर्भाग्य ! ज्यों ही खुला दरवाजा आया कि इसे खुजली लग गई।

CamScanner से स्कैन किया गया

दोनों हाथों से यह खुलजाने लगा और इसी क्रम में खुले दरवाजे से आगे बढ़ गया। और फिर वही चौरासी का चक्कर !! मित्रो, माताओ ! यह जीवात्मा ही वह अन्धा व्यक्ति है और मानव योनि ही इस चक्र से मोक्ष प्राप्ति का खुला द्वार है। अतः आत्मा की अपने प्रियतम के चरणों में यह पुकार कितनी स्वाभाविक है—'मा प्रगाम पथो वयं' हे नाथ ! हम मार्ग से पीछे नहीं लौटें। जिस योनि चक्र को पार करके हमने यह सुदिव्य मानव चोला पाया है, कहीं हमसे ऐसे कर्म न बन जायें जिससे हमें पुनः उन्हीं अन्धकारमयी भोगयोनियों में वापिस जाना पड़।

मित्रो और माताओ ! मन्त्र के इस पद में थोड़ा और गहरी डुबकी लगाने पर हमें तीन रत्न मिलते हैं (१) मानव देह की महत्ता की अनुभूति (२) ईश्वर कृपा में विश्वास (३) ईश्वर की न्याय व्यवस्था में विश्वास सच में यह मानव देह प्यारे प्रभु की सर्वश्रेष्ठ कला कृति है। इस देह के रचना कौशल पर, एक-एक इन्द्रिय के कार्य और देह में उनकी स्थिति पर थोड़ा भी चिन्तन करने पर उस महान् कलाकार के चरणों में मस्तक स्वयं ही नत हो जाता है। जन्म-जन्मान्तरों की साधना और कर्मफल भोगने रूपी घोर तप करने के पश्चात् यह अनमोल हीरा हमें मिला है। अतः हम प्रतिक्षण चिन्तन करते रहें कि कहीं हमसे ऐसे कर्म न बन जावें जिससे यह रत्न हमसे छिनकर पुनः हमें कुत्ते-बिल्ली आदि पशु और पक्षियों का अंधेरी योनियों में वापिस जाना पड़े। चन्द्र कवि के शब्दों में—

निज चरित्र पर कीजिये सन्तत 'चन्द्र' विचार।
केतौ मनुजन ते मिलै, केतौ पशु व्यवहार॥

शरीर की एक-एक इन्द्रिय की उपयोगिता और महत्व का विचार करने से अन्तर प्रभु की कृपाओं का स्मरण कर श्रद्धा से भर उठता है और अन्तर्हृदय से यह स्वर फूट पड़ते हैं—

CamScanner से स्कैन किया गया

सोचेउ गुनेउ परीखेहु देखा, तुम समान नहिं हितू सुलेखा।
बहुतक नाथ कृपा तुम कीन्हीं, मोहि विधेविधि सुविधा दीन्हीं॥
सर्व शिरोमणि मानुष काया, दीन्ह मोहि कर अनुपम दाया।
ताहू पर न भजौं तोहि काहीं, मो समान कोउ पामर नाहीं॥

हाँ, परमात्मदेव अमित कृपालु और न्यायकारी हैं। 'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाऽशुभं' के अनुसार उसकी न्याय-व्यवस्था अटल है। किसी प्रकार की रिश्वत और सिफारिश उसके दरबार में नहीं चलेगी। तब क्या साधनोपाय है, जिससे उसकी न्यायव्यवस्था के क्रम में फिर 'चौरासी के चक्कर' में, न भटकना पड़े। आयें, उसी से विनय करें, वही हमारा सच्चा सखा हमें अमूल्य मानव जीवन को धन्य, सफल और सार्थक बनाने की राह सुझायेगा। मेरे प्रियतम! तेरे सिवाय और है भी कौन जो भक्त की इस गहन आत्म पुकार को, उसकी टेर को सुनेगा—'मा प्रगाम पथो वयं' भगवन्! हमें वह साधनोपाय सुझाइये जिससे हम फिर चौरासी के फेर में वापिस न लौटें। परम कारुणिक भगवान् अपनी अमृत वाणी में उपदेश करते हुए समाधान देते हैं—'मा यज्ञादिन्द्र सोमिनः।

हे शान्त्याभिलाषी आत्मन्! तू इन्द्र है तू अपने इन्द्रत्व को जगा और कभी यज्ञ से दूर न हो। तू यज्ञशाली बन, याज्ञिक बन!

यहाँ 'सोमिनः' कितना उपयुक्त सम्बोधन है। आत्मा की चिर पिपासा इस शब्द के अन्तर से झाँक रही है। ईश्वर-जीव-प्रकृति इस त्रिक् के विवेचन में हम कल की कथा में विचार कर चुके हैं कि शांति की प्राप्ति ही जीवात्मा की यात्रा का उद्देश्य या चरम लक्ष्य है। कैसे प्राप्त हो, यह शान्ति? भगवान् कहते हैं—आत्मन्! इसका पहिला साधन तो यह है कि तुम अपने आत्म विराट् को जानो। तुम इन्द्र हो! तुम मेरे अमृत पुत्र हो। मेरे इस महान् सृष्टि-वैभव के स्वामी हो, तुम इन्द्र हो—आत्म कल्याण और लोक कल्याण की अमित शक्तियाँ तुम्हारे में निहित हैं। Know Thyself 'आत्मानं विद्धि'

CamScanner से स्कैन किया गया

तुम अपनी इन विभूतियों को पहिचानो। अपने आत्म-ऐश्वर्य को पहिचानो। कभी अपने को दीन-हीन मत समझो ! कभी निराशा और अवसाद को पास मत फटकने दो।

मेरे प्यारे ! तुम इन्द्र हो। तुम राजा हो, शासक हो, स्वामी हो अपनी इन्द्रियों के। कभी इन इन्द्रियों के गुलाम मत बनो। मेरे वत्स ! तुम इन्द्र हो—महान् पुरुषार्थी। पुरुषार्थ करो, पुरुषार्थ करो। हे शान्ति के अभिलाषी ! तुम इसी जीवन में अपने जीवन-लक्ष्य शान्ति-आनन्द या मोक्ष को पा जाओगे।

हाँ, पुरुषार्थ प्रिय आत्मन् ! याद रखो यह जन्म-मरण का बन्धन आया भी कर्म से है और यह कटेगा भी कर्म से ही। एक मनुष्य है। उसने अपथ्य या कुपथ्य सेवन किया। वह रोगी हो गया है। चारपाई पर पड़ा है, चल-फिर नहीं सकता। यह बन्धन उसने स्वयं प्राप्त किया अपथ्य सेवन से। यह बन्धन कैसे कटे ? अनाचार से बन्धन आया था, उपचार से बन्धन कटेगा। अपथ्य सेवन से बन्धन आया था, पथ्य सेवन से ' औषधि सेवन से) बन्धन कटेगा। अपथ्य सेवन रूप कर्म से अकर्म या कुकर्म से बन्धन आया था। पथ्य सेवन रूप सत्कर्म से बन्धन कटेगा। शान्ति मिलेगी। इसी पुरुषार्थमय सत्कर्म की संज्ञा है—यज्ञ। 'यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म'। तो भगवान् कहते हैं 'मा यज्ञादिन्द्र सोमिनः' शान्ति के अभिलाषी हे इन्द्र ! जीवन में किसी क्षण भी यज्ञ से परे मत हो। प्रतिक्षण प्रति पल यज्ञ करते रहो।

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥

यज्ञ कर्म या सत्कर्म करने की यह प्रेरणा भगवान् पवित्र यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय के इस द्वितीय मन्त्र द्वारा भी करते हैं, भगवान् स्पष्ट कहते हैं कि सौ वर्षों तक अर्थात् जीवन भर कर्म करते हुए ही जीने की इच्छा करो। सत्कर्म—यज्ञ कर्म मनुष्य को बाँधते नहीं, बन्धन को काटते हैं। प्रभु-प्राप्ति का अन्य कोई मार्ग नहीं है।

CamScanner से स्कैन किया गया

सामान्यतया समझा जाता है—'लोकोऽयं कर्म बन्धनः' कर्म लोक-बन्धन का कारण है। पर वेद माँ कहती है—कर्म ही बन्धन-मुक्ति का साधन है। कौनसा कर्म जो 'यज्ञ' बन गया है। कर्म में यह कौशल कि वह 'यज्ञ' बन जावे—योग है, यही जीवन-कला है। महाराज कृष्ण कहते हैं—'योगः कर्मसु कौशलम्' कर्म में कौशल उसे यज्ञमय बना देना प्रभु से वियोग नहीं, योग कराता है, मिलाता है। इस प्रकार ज्ञान पूर्वक किये गये कर्म जब 'यज्ञ का रूप लेते हैं तो वही 'उपासना' बन जाते हैं। और ज्ञान+कर्म+उपासना का यह त्रिवेणी संगम मानव का मोक्ष तीर्थ बन जाता है। क्या है यह यज्ञ ? क्या है यह कर्म कौशल ? कैसे हमारा प्रत्येक कार्य-कलाप 'यज्ञ' बन कर 'जीवन कला' बन जाता है ? वेद माता ने बताया—मान्तः स्थुर्नो अरातयः—मा अन्तुः स्थुः अरातय अर्थात् अदानताओं को, संकीर्णताओं को, अनुदारताओं को अपने अन्तर में मत बसाओ। यहाँ 'अरातयः' शब्द बहुवचन में है। तो कितने क्षेत्र हैं—अनुदारता और संकीर्णता के स्थान में उदारता, आत्मीयता और विशाल हृदयता की अभिव्यक्ति के ?

हमारे समस्त कायकलाप या सम्पूर्ण जीवन व्यापार पाँच भागों में बटे हैं। वस्तुतः हमारा विराट् व्यक्तित्व ही पञ्चधा—पाँच प्रकार का है। वेद माँ कहती है—'पञ्चस्वन्तः (पंचसु अन्तः) पुरुष आ विवेश' यह पुरुष पाँच में प्रविष्ट है। हममें से प्रत्येक प्रथम तो अपने शरीर में प्रविष्ट है—यह हमारा वैयक्तिक (निजी) जीवन है। दूसरे हममें से प्रत्येक अपने-अपने परिवार में प्रविष्ट है, यह हमारा पारिवारिक जीवन है। तीसरे प्रत्येक किसी समाज का सभ्य है यह सामाजिक जीवन है। चौथे प्रत्येक एक राष्ट्र का नागरिक है यह राष्ट्रीय जीवन है और पाँचवें हममें से प्रत्येक विश्व संस्था का भी सदस्य है—यह हमारा वैश्व जीवन है। जीवन के ये सभी अंग हमारे विराट् जीवन के अंग हैं। मेरा अपना जीवन ही नहीं, मेरा परिवार भी मैं

CamScanner से स्कैन किया गया

ही हूं, वह मेरा ही अंग है। इसी प्रकार मेरा समाज, मेरा महान् राष्ट्र और सम्पूर्ण विश्व भी मानो मेरे जीवन का ही विस्तार है।

अयं निजः परोवेती गणना लघुचेतसाम्।
उदार चरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

उदारता का, आत्मीयता का यह विस्तार ही यज्ञ है, योग है। प्यारे प्रभु की मिलन-राह है। हमारे पञ्चधा जीवन के इसी क्रम में हमारे वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय और वैश्व—यह पञ्चधा कर्त्तव्य हैं। ये सभी मिलकर ही हमारे समग्र व्यक्तित्व को बनाते हैं। इनमें से किसी एक कर्त्तव्य की उपेक्षा भी, किसी एक क्षेत्र में अनुदारता या संकीर्णता भी हमारे व्यक्तित्व का अधूरापन होगा और हमें उतने ही अंशों में यज्ञ के फल शान्ति से वञ्चित रखेगा।

आश्रम व्यवस्था—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यास में भी इन्हीं कर्त्तव्यों का समावेश है तथा इन्हीं पञ्चधा कर्त्तव्यों को मानो हमारे ऋषियों ने पंचयज्ञों में समाहित करने का यत्न किया है।

वे पाँच यज्ञ हैं—(१) ब्रह्म यज्ञ (२) देव यज्ञ (३) पितृ यज्ञ (४) अतिथि यज्ञ (५) भूत यज्ञ (नृयज्ञ)। इनमें से देवयज्ञ प्रतीक रूप में समस्त यज्ञों का मूलाधार है। यह देवयज्ञ (अग्निहोत्र) जो हम और आप करते हैं, कोई साधारण कर्म नहीं है। पवित्र वेद के अनेक मन्त्रों में यज्ञ के महत्व और आवश्यकता को बताया गया है। अब हम संक्षेप में देवयज्ञ की महिमा पर विचार करते हुए चिन्तन करेंगे कि किस प्रकार यह देवयज्ञ हमारे जीवन-यज्ञ का प्रेरक तथा प्रतीक रूप में अन्य यज्ञों का आधार है।

देवयज्ञ हमारा सहज मानवीय कर्त्तव्य है। हम अपने शरीर के प्रत्येक अवयव से भगवान् की इस सृष्टि को दूषित करते हैं, गन्दा बनाते हैं। आँखों से ढींढ़ निकलती है, कानों से मैल निकलता है, मुँह से हम थूकते हैं-खखारते हैं, नाक से भी बदबूदार वस्तु निकालते हैं। मल और मूत्र से भी हम गन्दगी फैलाते हैं। अतः हमारा परम

CamScanner से स्कैन किया गया

धर्म है कि हम कम से कम अपने हिस्से की दुर्गन्धि मिटाने के लिए देवयज्ञ (अग्निहोत्र) अवश्य करें और जल-वायु आदि देवों का ऋण चुकायें।

देवयज्ञ या अग्निहोत्र से भौतिक देवता—अग्नि, जल-वायु-आकाश आदि प्रसन्न होते हैं। ये सभी शुद्ध होकर अनेक रोगों का निवारण कर यज्ञकर्त्ता को उत्तम स्वास्थ्य देते हैं, यज्ञ में वेद मन्त्रों का उच्चारण होने से पवित्र वेद की रक्षा होती है, शब्द नित्य होने से वातावरण वेदमय बनता है, वेदपाठ का पुण्य मिलता है, 'निकामे-निकामे नः पर्जन्यो' यज्ञ से समय पर इच्छानुसार वर्षा होती है-अति-वृष्टि और अनावृष्टि से उत्पन्न दुरवस्था से राष्ट्र की रक्षा होती है, उत्तम और समयानुकूल वर्षा से उत्तम अन्न-फलादि प्रचुर मात्रा में होते हैं। उत्तम और सात्विक अन्न-फलादि के आहार से मनुष्न प्राण (जीवन) धारण करता है और उसका उत्तम आचार-व्यवहार बनता है जिससे व्यक्ति और समाज स्वर्ग-सुख लाभ करते हैं। तभी यज्ञ को महिमा में कहा गया है—'स्वर्ग कामो यजेत' सुख का अभिलाषी यज्ञ करे। परम योगी, महात्मा श्रीकृष्ण अर्जुन को इसी तथ्य को समझाते हैं—

अन्नाद् भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्न सम्भव:।
यज्ञाद् भवति पर्जन्यो यज्ञःकर्म समुद्भव॥ गीता ३।१४

अर्थात् (शुद्ध) अन्न से प्राणी (पवित्र) जीवन धारण करते हैं, (शुद्ध) अन्न बादल (उत्तम वर्षा) से होता है। (समयानुकूल उत्तम) वर्षा यज्ञ से होती है तथा यज्ञ सत्कर्म या सदाचरण से होता है।

महाभारत में महाराज कृष्ण की प्रातश्चर्या का उल्लेख है। वहाँ बताया है कि श्रीकृष्ण प्रातः ३ बजे उठ जाते थे। उठकर वे प्रातः ओम् जप और योगाभ्यास करते थे। पुनः अग्निहोत्र और सन्ध्योपासना तथा वेदपाठ करते थे। पश्चात् अपनी अश्व शाला में जाते थे। और तब द्वारिका के गणतन्त्र की सभा में प्रवेश करते थे।

CamScanner से स्कैन किया गया

जब श्रीकृष्ण पांडवों की ओर से सन्धि का प्रस्ताव लेकर हस्तिनापुर की ओर जा रहे थे, मार्ग में उन्हें सूर्यास्त हो गया। तब श्रीकृष्ण जी द्वारा सन्ध्योपासना का वर्णन महर्षि व्यास जी ने इस प्रकार किया है—

अवतीर्य रथात् तूर्णं कृत्वा शौचं यथाविधि।
रथमोचनमादिश्य सन्ध्यामुपविवेश ह॥
(महा० उद्यो० ८४।२१)

श्रीकृष्ण ने रथ से उतर कर सारथि को रथ खोलने की आज्ञा दी और विधिपूर्वक शौच और स्नान आदि करके सन्ध्योपासन करने लगे।

श्रीकृष्ण हस्तिनापुर पहुंच गये। कौरव सभा में जाने से पूर्व उनके सन्ध्या और यज्ञ करने का वर्णन अवलोकन कीजिये—

कृतोदकानुजप्यः सहुतार्ग्निः समलंकृतः (उद्यो० ८४।६)

श्रीकृष्ण स्नान, जप और अग्निहोत्र करके अलंकृत होकर कौरव सभा को चले।

मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् राम भी श्रीलक्ष्मण आदि भाइयों सहित प्रतिदिन अग्निहोत्र (देवयज्ञ) और सन्ध्योपासना (ब्रह्मयज्ञ) करते थे। विश्वामित्र जी—श्रीराम को जगाते हुए कहते हैं—

कौशल्या सुप्रजा राम पूर्वा सन्ध्या प्रवर्त्तते।
उत्तिष्ठ नरशार्दूल ! कर्त्तव्यं दैवमाह्निकम्॥
(वा०रा०वा० २३।१)

हे कौशल्यानन्दन राम ! प्रातः होने को है, अब उठो और देवयज्ञ (अग्नि होत्र) एवं सन्ध्यादि प्रातः कृत्य करो।

हमारी मान्या माताओ और मित्रो ! हम सभी जानते हैं कि श्रीराम लक्ष्मण महर्षि विश्वामित्र के साथ यज्ञ की रक्षा के लिये ही गये थे। वन में जाकर भी श्रीराम ने जब देखा कि राक्षस ऋषियों

CamScanner से स्कैन किया गया

के यज्ञ को विध्वंश करते हैं तो यज्ञ की रक्षार्थ ही उन्होंने प्रतिज्ञा की थी—

निशिचर हीन करौं महि भुज उठाइ प्रन कीन्ह ।

श्रीराम-लक्ष्मण द्वारा सन्ध्योपासना (ब्रह्मयज्ञ) का भी गो० तुलसीदास जी ने वर्णन किया है—

विगत दिवस गुरु आयसु पाई ।
सन्ध्या करन चले दोउ भाई ।।

प्रिय बन्धुओ ! एक समय कुछ ऋषि लोग महाराज अश्वपति (राष्ट्रपति) के यहाँ पहुंचे । महाराज ने ऋषियों से जब आतिथ्य ग्रहण करने की प्रार्थना की तो ऋषियों ने अनिच्छा प्रकट की। इस पर महाराज अश्वपति (राष्ट्रपति) कितने आत्म विश्वास के साथ कहते हैं—

न मे स्तेनो जनपदे कदर्यो न च मद्यपः ।
नानाहिताग्निर्नाविद्वान् न स्वैरी स्वैरिणी कुतः ।।

अर्थात् ऋषि गणो ! आप मेरा आतिथ्य क्यों नहीं स्वीकारते, मेरे तो सम्पूर्ण राष्ट्र में एक भी चोर नहीं है, एक भी कंजूस (अनुदार) व्यक्ति नहीं है, और एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं जो किसी भी प्रकार की नशीली वस्तु—शराब, सुल्फा, गाँजा-अफीम, तम्बाकू आदि का सेवन करने वाला हो। इसी क्रम में महाराज कहते हैं—मेरे सम्पूर्ण जनपद में एक भी व्यक्ति और परिवार 'अनाहिताग्निः'—अग्निहोत्र न करने वाला नहीं है। इसी प्रकार एक भी व्यभिचारी-दुराचारी नहीं तो व्यभिचारिणी तो क्यों कर हो सकती है ?

मित्रो ! यह कैसा स्वर्णिम समय रहा होगा, जब यज्ञ और यज्ञमय जीवन का ऐसा महत्व हमारे राष्ट्रपति मानते थे। इसलिए तो मानव धर्म शास्त्र प्रणेता महर्षि मनु ने व्यवस्था दी है—

ब्रह्मयज्ञं देवयज्ञं पितृयज्ञं च सर्वदा ।
नृयज्ञं भूतयज्ञं च यथाशक्ति न हापयेत् ।।

CamScanner से स्कैन किया गया

अर्थात् इन पाँचों यज्ञों को यथाशक्ति किसी अवस्था में न छोड़े। वैदिक संस्कृति में इसलिये प्रत्येक पर्व और संस्कार में यज्ञ की अनिवायता रखी गई है।

प्रिय मित्रो ! यहाँ तक हमने देवयज्ञ के स्थूल स्वरूप या द्रव्य यज्ञ को चर्चा की है। पर हम याद रखें यह भौतिक यज्ञ ही यज्ञ नहीं है। यह यज्ञ भी यज्ञ है। हमें 'ही' और 'भी' के इस अन्तर को भली भाँति समझना होगा। वेद माता कहती है कि यह द्रव्य यज्ञ तो महत्वपूर्ण है ही पर इससे भी कहीं अधिक महत्वपूर्ण 'चेतन यज्ञ' है, हमारा जीवन यज्ञ है। वेद माँ उपदेश करती है—

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वतः।
अस्ति नु तस्माद् ओजीयो विहव्येन ईजिरे॥

अर्थात् (विहव्येन) विशेष हव्य द्रव्यों से हम जो (ईजिरे) यज्ञ करते हैं, वह निस्सन्देह अत्यन्त महत्वपूर्ण है किन्तु (अस्ति नु) (तस्माद् ओजीयो) उससे भी अधिक आजोय-महत्वपूर्व यज्ञ है (यत्पुरुषेण हविषा) जिसे स्वयं अपनी जीवन हवि देकर (देवाः यज्ञं अतन्वतः) देव जन विस्तृत करते हैं।

यह भौतिक यज्ञ ही चेतन यज्ञ (जीवन-यज्ञ) की प्रेरणा का आधार है। यज्ञ का एक-एक पात्र यज्ञवेदी पर अपना २ अभिनय करता हुआ कुछ बोलता है। यज्ञ की एक २ विधि, एक २ प्रक्रिया— यह तीन मेखलायें, यह आचमन क्रिया, अग्न्याधान, समिदाधान, पंचघृताहुति, जल-प्रसेचन आदि सभी क्रियायें हमें कुछ कहती हैं।* काश, कि हम उसे सुन सकें ! यहाँ हम अग्न्याधान प्रक्रिया पर कुछ चिन्तन करने लगे हैं। मन्त्र है—

ओं भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीववरिम्णा तस्यास्ते देव यजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नायादधे।

---

* ईश कृपा से इस सबका विशद विवेचन हम अपने 'यज्ञ विज्ञान' ग्रन्थ में करने का यत्न करेंगे।

CamScanner से स्कैन किया गया

कैसे निष्पन्न हो हमारा जीवन-यज्ञ ?

(देव यजनि पृष्ठे) हमारा यह मानव शरीर देवों की यज्ञ स्थली है। आयें, हम इस शरीर को ही वेदी बनालें। इस वेदी में हृदय रूपी हवन कुण्ड है। इसमें हम श्रद्धा की अग्नि जलाकर 'अन्याधान' करें। पर कब हमारा हृदय यज्ञ कुण्ड बनेगा ? जब यह 'द्यौः इव भूम्ना' आकाश की भाँति विशाल और 'पृथिवी इन वरिम्णा' पृथ्वी की भाँति श्रेष्ठ बन सके।

महर्षि वशिष्ठ और विश्वामित्र का विरोध बड़ा प्रसिद्ध था, उन दिनों। विश्वामित्र के कठोर तप के बाद भी वाशिष्ठ ने उन्हें राजर्षि की पदवी दी, ब्रह्मर्षि की नहीं। यही उनके विरोध का कारण था। आज पूर्णिमा की रात्रि है। चन्द्रमा की उज्ज्वल-धवल स्निग्ध चाँदनी चहुं ओर छितरी हुई है। महर्षि वशिष्ठ अपने आश्रम पर ब्रह्मचारियों को उपदेश करते हुए अनायास किसी प्रसंग में कहने लगते हैं—'प्रिय ब्रह्मचारियो ! देखो, चन्द्रमा की चाँदनी कितनी उज्ज्वल और निष्कलङ्क है, जैसे विश्वामित्र का यश।

"मैं यह क्या सुन रहा हूं ?" वहीं एक वृक्ष के घने झुरमुट में आज महामुनि वशिष्ठ को समाप्त करने के संकल्प के साथ छिपे बैठे विश्वामित्र ने जब महर्षि वशिष्ठ की यह उपमा सुनी तो उन्हें रोमांच हो आया। इस महाबली का शरीर पसीने में नहा उठा। 'अरे ! तो यह है महामुनि वशिष्ठ का वास्तविक स्वरूप ! अहा, कितना विशाल हृदय !! प्राणों के घातक बने शत्रु की परोक्ष में ऐसी प्रशंसा !' और बस, अगले क्षण ही विश्वामित्र 'धिग्बलं क्षत्रिय बलं ब्रह्मतेजो बलं बलं' कहते हुए मुनि वशिष्ठ के चरणों को अपने अश्रुओं से नहला रहे थे और मुनि वशिष्ठ विश्वामित्र को हृदय से लगाते हुए कह रहे थे—उठो, ब्रह्मर्षि विश्वामित्र ! अब आपका 'अहं' रूपी राक्षस जाता रहा। अब आप सच में 'ब्रह्मर्षि' बन गये और बन गये जीवन कला के आचार्य। यह है 'द्यौः इव भूम्ना' आकाश की भाँति विशाल हृदय का आदर्श।

CamScanner से स्कैन किया गया

अब पृथ्वी की भाँति श्रेष्ठता का भी एक उदाहरण देखिए। सन्त दादू जंगल में कुटी बनाकर रहते हैं। दिन भर वे जंगल के झाड़-झङ्कार काटते, काँटे हटाते और इस प्रकार राहगीरों का मार्ग प्रशस्त करते और हर समय प्रभु नाम की खुमारी में मस्त रहते। ठीक ही लिखा है न, गुरु नानक ने—

बोदा नशा शराब का, उतर जाय परभात।
नाम खुमारी नानका, चढ़ी रहे दिन-रात॥

तो सन्त दादू इसी खुमारी में डूबे रहते। उनके यज्ञमय जीवन की सुगन्धि सभी ओर व्यापने लगी। समोप के नगर का कोतवाल अभी नया-नया आया था। सन्त की प्रसिद्धि सुनी तो उनके दर्शन की इच्छा हुई। चल पड़े अपने घोड़े पर सवार होकर। गुजरे उस मार्ग से, जिसमें सन्त दादू राह साफ करने रूप यज्ञ कर्म में संलग्न थे। घोड़े को थोड़ा रोककर इन्हीं से कोतवाल ने ऊँचे स्वर में पूछा 'अरे, सुनो! तुम्हें पता है सन्त दादू की कुटी यहाँ किधर है? महाराज का मौन व्रत था। वे हाथ से बाहर के काँटे साफ करते जाते थे और प्रभु के जप द्वारा मौन व्रती बन अन्दर के काँटे भी बुहारते जाते थे। अतः वे कुछ बोल नहीं सके। कोतवाल ने अब चीखकर कहा—'अरे, बहरा है क्या? सुनता नहीं, पूछता हूं—सन्त दादू की कुटी किधर है? सन्त को फिर भी मौन देखकर कोतवाल का पारा चढ़ गया। घोड़े से उतर कर उसने आव देखा न ताव सन्त दादू को तड़ातड़ कोड़े बरसाना शुरू कर दिया। सन्त महाराज लुहलुहान हो गये। वे फिर भी मौन और शान्त थे, जैसे कुछ हुआ ही न हो। कोतवाल गाली गलौज करता आगे बढ़ गया। थोड़ा ही चला था कि उसे पड़ोस का ही एक और बटोही मिला। उससे पूछा—'क्या तुम्हें पता है, सन्त दादू की कुटी किधर है?' राहगीर ने समय का ध्यान करते हुए बताया कि 'यह समय महाराज के मौन व्रत और राह के काँटे एवं झाड़ियाँ साफ करने का है। क्या आपको पीछे रास्ता साफ करता हुआ कोई व्यक्ति नहीं मिला?' हाँ, मिला तो था, तब क्या वही सन्त दादू है?

CamScanner से स्कैन किया गया

"हाँ, हाँ ठीक वही तो प्रसिद्ध सन्त दादू हैं," बटोही का उत्तर था फिर क्या ! सन्त की सहिष्णुता और अपनी क्रूरता का विचार कर कोतवाल पसीना-पसीना हो गया। वह दौड़ा और सन्त के चरण पकड़कर क्षमा याचना करने लगा। भक्त दादू ने उसे हृदय से लगा लिया। धन्य थे जीवन कला के पारखी सहिष्णुता की प्रतिमूर्ति सन्त दादू ! पृथिवी को खोदिये, उस पर थूकिये-खखारिये कुछ, भी कीजिये पृथ्वी सब कुछ सहती है। पृथ्वी की यह सहिष्णुता ही उसकी श्रेष्ठता (वरिम्णा) का रहस्य है। आ मेरे यजमान ! तूभी पृथ्वी की भाँति सहिष्णु और आकाश की भाँति उदार बन और तब अपनी इस (देव यजनि पृष्ठे) देवों की यज्ञस्थली में 'सप्त होता' 'सप्त ऋषयः' इन सात ऋषियों द्वारा जीवन-यज्ञ में श्रद्धा से भरी उत्तमोत्तम हवियाँ दे। कौन से हैं ये सात ऋषि ? हमारे दो नेत्र, दो कान, दो नासिका-छिद्र और एक मुख—यही तो है सप्तर्षि मण्डल। अब जैसे हम यज्ञकुण्ड में समिधायें चढ़ाते हैं, जो घृत और शाकल्य होमते है तो ध्यान रखते हैं कि सब वस्तुयें अधिकतम शुद्ध हों—घी डालडा या खराब न हो, सामग्री सड़ी हुई, कीड़ो लगी हुई न हो तथा समिधा भी घुन लगी या अपवित्र न हो, ठीक इसी प्रकार हमें ध्यान रखना है कि हमारी आँखों से, हमारे कानों से, हमारी नासिका और मुख से हम जो आहुतियाँ देते हैं—इस जीवन-यज्ञ में, वह भी शुद्ध और पवित्र हों। वेद माँ का उपदेश है—

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाँसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः॥

कानों से हम भद्र सुनें, आँखों से हम भद्र देखें अर्थात् हम भद्र श्रवण और भद्र दर्शन करें। इसी प्रकार वेद माँ ने बताया—**'वाचाः वदामि मधुमत् भूयासं मधु संदृशः'** अर्थात् धरती को मधुरता से सींचने के लिये हम शहद जैसा मीठा और हितकारी भद्र वचन कहें। भद्र श्रवण, भद्र दर्शन और भद्र वचन के साथ ही आवश्यक है मस्तिष्क

CamScanner से स्कैन किया गया

से भद्र चिन्तन, हाथों से भद्र कर्म और पाँवों से भद्र चलन करें, तब होगा हमारा आत्म-यज्ञ। इसी को वेद माता ने 'षड् योग भी कहा है। 'इमं यवं अष्टायोगैः षड् योगे भिरचक्रषुः" इस मन्त्रांश में चरित्र निर्माण के लिये आठों योगांगों के साथ उक्त छः प्रकार के योग (मस्तिष्क योग, कर्ण योग, नेत्र योग, वाग् योग, कर योग एवं पाद-योग) के पालन का उपदेश किया गया है।

वेद माँ अपने अमृत पुत्र मानव को उपदेश करती है—श्रोत्रं यज्ञेन कल्पताम् चक्षुर्यज्ञेन कल्पताम्, वाग्यज्ञेन कल्पताम्, मनो यज्ञेन कल्पताम् आत्मा यज्ञेन कल्पताम् और अन्त में कहा—यज्ञो यज्ञेन कल्पताम्। कैसे करें हम अपने कानों, नेत्रों, जिह्वा, वाणी, कर और पाद के द्वारा यज्ञ ? आयें, हम क्रमशः इस पर अति संक्षेप में विचार करें।

"देवाः अरंकृतं वेदिः" वेद माँ के इस उपदेश के अनुसार सबसे पहले आवश्यक है कि हम इन इन्द्रियों के अधिष्ठान, इन देवों की यज्ञस्थली (यज्ञवेदी) शरीर को पूर्ण (अरंकृतं) स्वस्थ-शोभन और अलंकृत बनायें। हम पहले भी विचार कर चुके हैं, हमारा यह शरीर दैवी नौका है, प्रभु प्राप्ति का साधन है, यह 'अष्ट चक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या' यह आठ चक्र और नौ द्वारों वाली अयोध्या नगरी मानव शरीर रूपी मन्दिर ही है जिसमें प्रियतम प्रभु का मधुर मिलन सम्भव है। तो यह भ्रम और भ्रान्ति है कि इस शरीर को गलाकर-सुखाकर भगवान् की प्राप्ति होती। हाथ-पैर आदि इन्द्रियों को फोड़-तोड़ देना नष्ट कर देना 'तप' है, यह समझना भारी भूल है। एक थे साधु। भिक्षा लेने निकले। एक सदगृहस्थ के द्वार पर गुहार लगाई—भिक्षाँ देहि। गृहिणी भिक्षा लेकर आई, देवी सुन्दर थी। देखा तो साधु के मन में विकार पैदा हुआ। ध्यान में मन नहीं लग रहा था, बड़ी आत्म-ग्लानि हुई, उन्हें। उन्होंने दो सलाखें लीं, उन्हें खूब तपाया और जलती हुई सूलाखों मे दोनों आँखें फोड़ लीं। बताते हैं कि ये साधु थे हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध कवि महात्मा सूरदास ! जो भी होवें

CamScanner से स्कैन किया गया

पर निश्चय ही भगवान के दिये हुए दिव्य वरदानों को नष्ट कर देना घोर कृतघ्नता है। ऐसा कृत्य ईश्वर प्राप्ति का साधन क्यों कर सकता है ? इसी प्रकार एक टाँग पर खड़े होकर उसे निष्क्रिय बना, हाथ को खड़ा रख के उसे निर्जीव बना देना यह सब 'तप' नहीं 'तपो द्वन्द्व सहनम्' तप है इन्द्रियों को पूर्ण सशक्त और बलवान बनाकर उन्हें विविध आकर्षण जन्य दुरुपयोग से सर्वथा बचाते हुए उनका पूर्ण सदुपयोग कर उन्हें 'यशोबलम्' यशवती बनाना—धन्य-सफल सार्थक बनाना। सन्ध्या के इन्द्रिय स्पर्श मन्त्रों में यही आदर्श निहित है।

क्या है नेत्रों का तप ? कैसे करें हम नेत्रों द्वारा यज्ञ ? कैसे करें नेत्रों द्वारा योग ? क्या है नेत्रों को सार्थकता ? एक मनीषी का वचन है—

मातृवत् परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत्।
आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पश्यति॥

यों तो सभी नेत्रों वाले हैं और देखते हैं, पर सच में वही नेत्रों वाला है, उसी का देखना धन्य है जो पराई स्त्री को माता के तुल्य, पराये धन को मिट्टी के समान और सब प्राणियों को अपनी आत्मा के समान देखता या समझता है। × ×

श्रीराम, यतिवर लक्ष्मण, वानर राज सुग्रीव और महावीर हनुमान अन्य वानरों के सहित ऋष्यमूक पर्वत पर बैठे हैं। सुग्रीव कुछ गहने और कुछ वस्त्र श्रीराम के आगे प्रस्तुत करते हुए कहते हैं—

'हे राम, ये आभूषण और वस्त्र एक देवी आकाश मार्ग से जाते हुए डालती गई थी। मुझे लगता है कि ये माता सीता के ही हैं, आप इन्हें पहचानिये। श्रीराम उनमें से कुछ आभूषण श्री लक्ष्मण को ओर बढ़ा देते हैं और कहते हैं—प्रिय लक्ष्मण, तुम इन्हें पहिचानो। माताओ और मित्रो ! महर्षि वाल्मीकि के शब्दों में यतिवर लक्ष्मण क्या उत्तर देते हैं, सुनिये—

CamScanner से स्कैन किया गया

नाहं जानामि केयूरे, नाहं जानामि कुण्डले।
नूपु रेत्वाभि जानामि नित्यं पादाभि वन्दनात् ॥

—वा० रा० कि० का० ६।२२

हे पूज्य भ्रातः ! मैं माँ सीता के न तो भुजबन्द पहिचान सकता हूं। न कुण्डल ही जानता हूं। हाँ, केवल बिछुओं की पहिचान मैं अवश्य कर सकता हूं क्योंकि मैं प्रतिदिन माँ सीता के चरण स्पर्श करके अभिवादन किया करता था।

श्री राधेश्याम जी 'रामायणी' ने इसी प्रसंग को अपने शब्दों में प्रस्तुत करते हुए लिखा है—

मैंने तो चरण निहारे हैं, देखे माता के कान नहीं।
मैं तो बिछुओं का सेवक हूं कुछ कुण्डल की पहिचान नहीं॥

अहा ! कैसा प्रेरक उदाहरण है, यह—नेत्रों के द्वारा यज्ञ का।

धर्म मूर्ति श्रीराम द्वारा भी नेत्र-यज्ञ के दो बड़े प्रेरक प्रसंग मिलते हैं। एक प्रसंग में तो शत्रु-पत्नी मन्दोदरी मेघनाद वध के पश्चात् अपनी पुत्रवधू सुलोचना को अपने पति का शिर लाने के लिये रामदल में निश्शङ्क होकर जाने की प्रेरणा करती है और राम-चरित्र की दाद देते हुए कहती है—

एक नारिव्रत रघुवर केरा।
लषण सुयश तुम सुनेहु घनेरा॥

धन्य हैं राम, शत्रु पत्नी भी जिनके नेत्रों की यज्ञमयता में निष्ठा रखती है। दूसरा प्रसङ्ग उस समय का है जब मेघनाद वध के पश्चात् रावण कुम्भकर्ण को कहता है—भाई तुम्हारी नींद (उपेक्षावृत्ति) की हद होती। सर्वनाश द्वार पर खड़ा है। अब तो जागो (ध्यान दो) कुम्भकर्ण कहता है—मुझे सब कुछ ज्ञात है। तुम सीता को चाहते हो, इतना ही तो तुम्हारा अभीष्ट है न ? तो इसका तो सहज उपाय है—

तुम राम को रूप अनूप धरो पुनि जावहु वेग सिया ढिग भाई।
मिलि है भरि अङ्क में बोरि सिया जिय जानि तुम्हें सुपिया रघुराई॥

CamScanner से स्कैन किया गया

अर्थात् तुम आकृति विज्ञान के तो आचार्य हो ही, राम की आकृति बनाकर सीता के पास जाओ। वह तुम्हें अपना पति राम समझकर दौड़कर तुम्हारे गले लग जायेगी और तुम्हारा अभीष्ट सिद्ध हो जायेगा। मित्रो और माताओ ! इसके उत्तर में रावण क्या कहता है ?

यह कारज हू करि देखि लियौ नहिं पाइ सक्यो किञ्चित् सफलाई।
जब राम को रूप बनावत हौं तब मातु सो दीखति नारि पराई॥

अर्थात् यह उपाय तुमने कुछ नया नहीं बताया। यह प्रयोग तो मैं कर चुका हूं। पर इसमें तो सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि राम का रूप बनाते ही पर स्त्री माता के तुल्य दिखाई पड़ने लगती है। धन्य-धन्य मेरे राम ! प्यारे राम ! आप धन्य हैं !!

आँख को नष्ट नहीं करना, उसके विकार को नष्ट करना है। आँख से वही देखना जो देखना चाहिए, यही है—'त्यक्तेन भुञ्जीथाः' का आदर्श ! देखो, पर त्याग पूर्वक—संयम पूर्वक। ऐसे देखो जैसे देखना चाहिए। महान् आचार्य ऋषिराज दयानन्द की भाँति सन्तान प्राप्ति की इच्छा लेकर आई हुई देवी में माँ के दर्शन करो, ठीक वैसे ही जैसे मुस्लिम शहजादी में छत्रपति शिवाजी ने माता जीजाबाई को देखा और वीर शिरोमणि अर्जुन ने उर्वशी में माँ को निहारा। देवियो और सज्जनो ! यही है नेत्र-यज्ञ, यही है नेत्र योग और यही है जीवन जीने की कला।

याद रखो, आंखों से कोई अश्लील स्वांग, नौटङ्की, सिनेमा नहीं देखो, अश्लील पुस्तकें नहीं पढ़ो अपने कमरे में गन्दे चित्र नहीं लगाओ इसी प्रकार कानों से गन्दे फिल्मी गीत सुनना सर्वथा छोड़ दो, न किसी की चुगली सुनो, न निन्दा। सदैव कानों से प्रभु-भक्ति के गीत सुनो, वेदोपदेश सुनो, गुरुजनों की कल्याणकारी बातें सुनो। यह होगा कर्ण योग या कर्ण यज्ञ।

CamScanner से स्कैन किया गया

वाणी द्वारा सदैव सत्य और प्रिय भाषण करो, कभी कड़वा-कठोर एवं गाली-गलौज की भाषा नहीं बोलो। **गाली देना एक भयङ्कर पाप और सामाजिक अपराध है।**

वाणी की सरसता और मिठास हमारे पारिवारिक और सामाजिक जीवन को मधुरता से सींच देती है प्रिय बन्धुओ ! किसी मनीषी ने ठीक ही कहा है—'तलवार का घाव भर जाता है, किन्तु वाणी का घाव नहीं भरता' आप जानते हैं महाभारत के इतने भयङ्कर सर्वनाशी काण्ड के पीछे कितनी एक साधारण सी घटना है। राजसूय यज्ञ की समाप्ति पर दुर्योधन 'मय' द्वारा निर्मित युधिष्ठिर के अनूठे राजभवन को देख रहा था। इस भवन के फर्श ऐसे विचित्र बने थे कि जहाँ पानी दिखाई पड़ता था वहाँ धरातल होता था जहाँ धरातल दीख पड़ता था वहाँ जल से भरा कुण्ड होता था। फर्श को जल समझकर जब दुर्योधन ने अपनी धोती को ऊँचा किया तो गवाक्ष में खड़ी द्रौपदी हँस पड़ी और जब जल कुण्ड को सामान्य धरातल समझकर दुर्योधन आगे बढ़ा तो जलकुण्ड में गिर गया तो द्रौपदी केवल ठठाकर हँसी ही नहीं उसके मुँह से निकला—'आखिर अन्धे के अन्धे ही रहे।' बस यह व्यंग वचन दुर्योधन के अन्तर्मन में चुभ गये। द्यूत (जुआ) काण्ड, द्रौपदी अपमान और अन्त में महाभारत का सर्वनाशी काण्ड इसी वाणी द्वारा दी गई अपवित्र आहुति का दुष्फल था। उर्दू के एक शायर ने ठीक ही लिखा है—

कुदरत को नापसन्द है सख्ती जुबान में।
उसने नहीं दी इसलिये हड्डी जुबान में॥

मित्रो और माताओ ! जिह्वा के दो काम हैं। जहाँ वाणी के रूप में वह कर्मेन्द्रिय है वहाँ रसना के रूप में वह ज्ञानेन्द्रिय है। याद रखो, चटोरी जीभ सर्वनाश का मूल है। हम "स्वाद के लिये नहीं स्वास्थ्य के लिए खायें" यह सूत्र ही 'त्येत्क्तेन भुञ्जीथाः' की व्याख्या है। रसना का संयम ब्रह्मचर्य साधना की कुञ्जी है। जिसकी जीभ

CamScanner से स्कैन किया गया

वश में नहीं है, वह ब्रह्मचर्य का पालन कदापि नहीं कर सकता। हम क्या खायें, कब खायें, कैसे खायें, इस आहार-विज्ञान का परिचय उत्तम स्वास्थ्य और यज्ञमय जीवन के लिये अत्यन्त आवश्यक है।

हम अपने बनाये मन्दिरों को साफ-सुथरा रखते हैं, उनमें धूप-दीप जलाते हैं, उन्हें सुगन्धित रखते है, पर कैसा आश्चर्य है कि भगवान् के बनाये 'अष्ट-चक्रा नव द्वारा देवानाँ पूरऽयोध्या' इस आठ चक्र और नौ दरवाजों वाली अयोध्या नगरी में अपने शरीर रूपी मानव मन्दिर में हम शराब-माँस-अण्डे, भाँग-गाँजा, बीडी-सिगरेट का धुँआँ सब कुछ डालते हैं ! कुछ लोग तो इन अभक्ष्य और अपवित्र वस्तुओं को धर्म के नाम पर, देवी-देवताओं के नाम पर खाकर दुहरा पाप करते हैं।

जीवन कला के अभ्यासी को आहार शुद्धि का विचार करते हुए यह भी ध्यान रखना है कि हमारी कमाई भी शुद्ध और सात्विक हो। उसमें कर्मचारियों का रक्त नहीं सना हो। भोजन से पूर्व पैर-हाथ धोना, मुख धोना, आचमन करना और अन्नदाता प्रभु का ध्यान करना, पालथी लगाकर भोजन करना, बलिवैश्वयज्ञ करना तथा चबा-चबा कर भोजन करना आवश्यक है। किसी मनीषी का वचन है—पानी, खाओ, रोटी पीओ। अर्थात् भोजन को इतना चबाओ कि वह तरल बन जाये।

जीवन को यज्ञमय बनाने में हमारे पैरों और हाथों का भी बड़ा भाग है। पैरों से कभी हम अपवित्र स्थान पर न जाकर सदैव सत्संग-कथा आदि उत्तम स्थानों पर ही जायें। अर्थात् हमारा चलन अच्छा हो। हमारे जीवन की चाल(गति) हमारे चलन पर निर्भर है। उत्तम चरण ही आचरण का मूल है, यह है पादयोग दूसरों को देने वाला ही 'देवता' है। इसी प्रकार हाथ से शुभ कर्म करना और कर्त्तव्य भावना से दान देना ही 'कर योग' है। × × यों जीवन में आदान-प्रदान तो चलता ही है, पर हम कम से कम लेकर अधिक से अधिक देने वाले बने—यही है जीवन जीने की कला ! हाथ की शोभा कङ्कण आदि अलङ्कारों से नहीं, दान से है।

CamScanner से स्कैन किया गया

दानशीलता-हृदय की सरसता, उदारता और विशालता का भाग है। इसीलिये वैदिक भक्त की विनय है-"मान्तः स्थुर्नो अरातयः" प्रभो ! हमारे हृदयों में अनुदारता या संकीर्णता न रहे। 'अरातयः' का अर्थ हमारे आन्तरिक शत्रुओं—काम-क्रोध-मद-लोभ-मोह ईर्ष्या मत्सर आदि से भी है। हमारे ये अन्तः विकार हमारे जीवन-यज्ञ को नष्ट कर देते हैं। हम संयमी बनें। हमारी प्रत्येक इन्द्रिय का संयम ही सच्ची जीवन कला है। क्रोध साधना का शत्रु है। लोभ-मोह, ईर्ष्या और मत्सर भी मनुष्य को कर्त्तव्य-पथ से हटाकर महा पतित बना देते हैं। परिवार-समाज और राष्ट्रों के पतन के मूल्य में गहराई से देखने पर मानव मन के इन्हीं विकारों का खेल दिखाई पड़ेगा। इनमें अभिमान को 'पाप मूल अभिमान' कहा गया है ! प्रभु के प्यार का और अभिमान का विरोध है। सन्त कबीर ने कहा—

जब मैं थो तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाहि।
प्रेम गली अति सांकरी, ता में दो न समाहि॥

जब मनुष्य सभी दुरितों से बचकर भद्रताओं से अपने जीवन को सजा लेता है तो पता नहीं कब किस प्रकार यह 'अहम्' उसका पल्ला आकर पकड़ लेता है। इसलिये वेद माँ ने कहा—'यज्ञो यज्ञं न कल्पताम्' अर्थात् हमारा संयम, साधना, सेवा और परोपकारादि यज्ञ कर्म सभी यज्ञ रूप परमात्मा के निमित हों। प्रभु ही समस्त यज्ञ कर्मों के प्रेरक और अधिष्ठाता हैं। हम तो निमित्त मात्र हैं। महाराज कृष्ण ने अर्जुन को कहा था—'निमित्त मात्रेण भव सव्यसाची।' गीता में वर्णित यह कर्त्तव्य-बुद्धि, यह निष्काम वृत्ति जीवन-कला के अभ्यासी में ही सम्भव है।

रहीम खानखाना का नाम आपने सुना होगा। ये अकबर के नव-रत्नों में से थे। हिन्दी साहित्य के उच्च कोटि के कवियों में इनका नाम आता है। 'रहीम के दोहे' तो बहुत प्रसिद्धि पा चुके हैं। ये बड़े दानवीर थे। दान देने की इनकी रीति बड़ी निराला थी। ये जब दान देते थे तो अपने भवन के सभी द्वार खोल देते थे, निगाहें नीची

CamScanner से स्कैन किया गया

और हाथ ऊँचे करके दान देते जाते थे। इनके समकालीन एक अन्य प्रसिद्ध कवि गंग जी थे। एक दिन गंग कवि ने रहीम जी को जब इस प्रकार से दान देते हुए देखा तो पूछ ही लिया—

सीखे कहाँ रहीम जू ऐसी देनी देन।
ज्यों-ज्यों कर ऊँचौ उठे ता विधि नीचे नैन॥

सुनिये, मित्रो ! रहीम जी का क्या उत्तर था ?

देने वाला और है, देता है दिन रैन।
लोग भरम मुझ पै करें, ता विधि नीचे नैन॥

अहा ! यज्ञमय जीवन का, प्रभु समर्पित निष्काम जीवन-साधना का और 'इदं न मम' के दिव्य आदर्श का कैसा अनूठा उदाहरण है !

ब्रह्मयज्ञ—सन्ध्या मानो देवयज्ञ का सूक्ष्मीकरण है। सन्ध्या के प्रथम भाग इन्द्रिय स्पर्श से अघमर्षण तक स्वयं के प्रति कर्त्तव्य पालन या व्यक्तिगत जीवन में यज्ञ भावना जगाने की प्रेरणा है। 'शरीरमाद्य खलु धर्म साधनम्' अर्थात् निश्चय से शरीर ही धर्माचरण का प्रथम साधन है,इस सूक्तिअनुसार शरीर और उसकी सभी इन्द्रियों को पूर्ण स्वस्थ और निरोग बनाना धर्म है, यज्ञ है। इन्द्रिय स्पर्श मन्त्र द्वारा इन्द्रियों को स्वस्थ व यशस्वी बनाना है। मार्जनमन्त्रों के प्रकाश में प्रभु प्रेम के साबुन से प्रत्येक इन्द्रिय को माँजना है उनके द्वारा यज्ञ और योग करना है। प्राणायाम मन्त्र द्वारा बुद्धि को निर्मल बनाकर अघमषण मन्त्रों में वर्णित प्रभु की महत्ता को हृदयंगम कर अघ (पाप) के मूल अभिमान का नाश करना है, साथ ही पाप के दूसरे आधार अवसाद या आत्महीनता को भी दूर करना है। यही है आत्म-यज्ञ या जीवन यज्ञ की प्रक्रिया। आत्म-निर्माण ही राष्ट्र-निर्माण और विश्व की सुख शान्ति का मूल है। मित्रो और माताओ ! आयें, हम प्रभु के चरणों में विनय करें कि वे हमें शक्ति-भक्ति दें जिससे हम मन्त्र में वर्णित वेद माँ के उपदेशानुसार आचरण करते हुए, यज्ञशील बन सकें तथा जीवन के चरम लक्ष्य शान्ति को प्राप्त कर अपनी 'सोमिनः' संज्ञा को सार्थक कर सकें। यही है जीवन जीने की कजा !

CamScanner से स्कैन किया गया

चौथा दिन—

जीवन कला [३] वैदिक स्वर्ग

धरती का स्वर्ग—गृहस्थाश्रम

ओं भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यम्भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो योनः प्रचोदयात्। —यजु० ३६।३॥

ओं। यत्रा सुहार्दः सुकृतो मदन्ति विहाय रोगं तन्वास्वायाः।
अश्लोणाः अंगै रहुताः स्वर्गे तत्र पश्येम पितरौ च पुत्रान्॥
—अथर्व० ३।१२०।३॥

सामूहिक गीतिका

हे दयामय! आपका हमको सदा आधार हो।
आपके भक्तों से ही भरपूर यह परिवार हो॥

छोड़ देवें काम को और क्रोध को मद, मोह को।
शुद्ध और निर्मल हमारा सर्वदा व्यवहार हो॥ २

प्रेम से मिल-मिल के सारे गीत गायें आपके।
दिल में बहता आपका हो प्रेम-पारावार हो॥ ३

जय पिता जय-जय पिता हम जय तुम्हारी गा रहे।
रात-दिन घर में हमारे, आपकी जयकार हो॥४

धन-धान्य घर में जो प्रभो! सब आपका ही है दिया।
उसके हित प्रभु आपका धन्यवाद सौ-सौ बार हो॥५

पास अपने हो न धन, तो इसको कुछ परवाह नहीं।
आपकी भक्ति से ही धनवान् यह परिवार हो॥६

CamScanner से स्कैन किया गया

मित्रो और माताओ ! वेद माता है। हर अच्छी माँ अपने नन्हे-मुन्ने को कुपथ से हटाकर सुपथ में प्रवृत्त करती है। वेद माता प्रभु-पुत्र मानव को अपने जीवन-प्रद सन्देश द्वारा जीवन जीने की कला सिखाती है। हम विचार कर चुके हैं कि मनुष्य का यह चोला प्रियतम प्रभु की सर्वश्रेष्ठ रचना है, यह मानव शरीर हमें अपने आत्मा को लम्बी यात्रा के अन्तिम लक्ष्य शान्ति की प्राप्ति के लिये ही मिला है। शान्ति की प्राप्ति शान्तिधाम परमात्मा की प्राप्ति से होगी। और प्रभु की प्राप्ति प्रभु की आज्ञा पालन रूप भक्ति से होगी। प्रभु की आज्ञा है— 'मा यज्ञात्' मानव ! तू यज्ञ से परे हो, तू यज्ञशील बन।

मित्रो और माताओ ! हम यह भी विचार कर चुके हैं कि जीवन को यज्ञशील बनाने का अर्थ है अपने व्यक्तित्व के पाँचों अङ्गों- व्यक्तिगत जीवन, पारिवारिक जीवन, सामाजिक जीवन, राष्ट्रिय जीवन और वैश्व जीवन—में यज्ञ-भावना को प्रतिष्ठित करना। यह ठीक है कि हमारे व्यक्तिगत जीवन की यज्ञमयता, व्यक्तिगत आचरण की पवित्रता अथवा व्यक्तिगत चरित्र की महत्ता हमारे पञ्चधा व्यक्तित्व का आधार है, पर हम भूलें नहीं कि यदि किसी व्यक्ति का, अपना जीवन बड़ा पवित्र और यज्ञीय है, वह शब्द के सही अर्थों में 'आर्य' है, पर यदि उसकी पत्नी, उसके बालकों तथा परिवार के अन्य सदस्यों में आर्यत्व नहीं, पारिवारिक चरित्र नहीं, परस्पर सद्भाव, उदारता और याज्ञिक भावना नहीं तो उसका व्यक्तित्व उतना ही अपूर्ण और अधूरा है। तो आयें हम विचार करें कि पारिवारिक जीवन में हम किस प्रकार यज्ञ भावना को प्रतिष्ठित करें।

मित्रो ! आप सभी जानते हैं कि हमारे व्यक्तिगत जीवन की समुन्नति या आत्मोन्नति का सम्बन्ध जहाँ मुख्य रूप से ब्रह्मचर्य आश्रम से है, वहाँ हमारे पारिवारिक जीवन का गृहस्थाश्रम से। अतः पारिवारिक जीवन को यज्ञमय-सुख शान्तिमय बनाने की दिशा में कुछ भी विचार करने के पूर्व प्रथम गृहाश्रम और गृहाश्रम की

CamScanner से स्कैन किया गया

आधार गृहणी या नारी की महत्ता और गौरव-गरिमा को भलीभांति हृदयंगम करना होगा।

पवित्र वेदों में 'पुरन्धिर्योषां आजायताम्' कहकर नारी को राष्ट्र जीवन का आधार बताया है। अन्यत्र भी कहा है—'स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ' निश्चय से ही स्त्री गृहस्थ-यज्ञ या राष्ट्र-यज्ञ की ब्रह्मा है। 'इमाः शुद्धाः पूताः यज्ञियाः' देवियाँ शुद्ध-पवित्र और यज्ञ रूप हैं। अहा! कैसा गौरवमय दृष्टिकोण है पवित्र वेद का नारी के प्रति, मातृशक्ति के प्रति। वैदिक युग का सम्पूर्ण इतिहास नारी की गौरव गाथा की प्रेरक कहानी है। कहीं हम अपाला और घोषा जैसी देवियों को ऋषियों की भाँति ऋषिकाओं के रूप में वेद मन्त्रों का रहस्यार्थ खोलते हुए, मन्त्र-दर्शन करते हुए पाते हैं तो कहीं हम विदुषी गार्गी को महाराज जनक की सभा में ऋषि याज्ञवल्क्य के साथ शास्त्रार्थ करते हुए देखते हैं। मोक्ष पथ की साधिका मैत्रेयी का अपने पतिदेव मुनि याज्ञवल्क्य के साथ संवाद, सीता और सावित्री की आदर्श पति-भक्ति, अत्रि-अनुसूया का आदर्श गृहाश्रम, माता मदालसा की पुत्र-निर्माण कला, माता विदुला द्वारा सञ्जय को क्षात्र धर्म की प्रेरणा, आदि एक-दो नहीं, अनेक-अनेक चित्रों में, मातृशक्ति की यह गरिमा पूर्ण विकसित रूप में उभर कर आई है।

कैसे कष्ट का स्थल है कि वाम मार्ग काल में जब हमारा नाम उलट कर आर्य से हिन्दू बनाया गया, हमारा धाम उलट कर आर्यावर्त्त से हिन्दुस्थान कर दिया गया, रामायण-महाभारत आदि इतिहास ग्रन्थों तथा अन्य ग्रन्थों में मिलावटें की गईं अर्थात् वाममार्ग काल में हमारे नाम धाम, धर्म-कर्म इतिहास और आस्थाओं सबको उलटा गया, वाम का अर्थ ही है 'उलटा' तो इसी क्रम में राष्ट्र जीवन की आधार नारी और गृहाश्रम की महिमा को भी उलट दिया गया।

आप सभी जानते हैं कि महात्मा राम जब माता कौशल्या से वन जाने के लिये आज्ञा और आशीर्वाद लेने पहुंचे उस समय महर्षि

CamScanner से स्कैन किया गया

वाल्मीकि के शब्दों में माता कौशल्या—रेशमी परिधान पहने अग्निहोत्र कर रही थीं। (**सा क्षौम वसना.....अग्नि जुहोति स्म**)

इसी प्रकार महावीर हनुमान् जब लङ्का में माता सीता की खोज करने पहुंचते हैं और वहाँ उन्हें सायंकाल के समय अशोक वाटिका के समीप एक पतली धार वाली नदी दीख पड़ती है तो तुरन्त ही एक विचार उनके मन-मस्तिष्क में कौंध जाता है कि 'यदि सा जीवति देवी०' अर्थात् अगर सीता जीवित है तो—

सन्ध्या काल मनः श्यामा ध्रुव मेष्यति जानकी।
चेमां शुभ जलां नदीं सन्ध्यार्थे वर वर्णिनी॥

—वह सायंकाल के समय इस स्वच्छ जल वाली नदी के किनारे सन्ध्योपासना करने अवश्य आयेगी।

प्रकट है कि वैदिक युग में देवियाँ यज्ञ करती थीं, सन्ध्योपासना करती थीं, गायत्री चिन्तन एवं ओ३म् जप करती थीं और इसलिये यज्ञोपवीत धारण करती थीं। इस वाममार्ग काल मे नारी को यज्ञ, सन्ध्या, गायत्री और यज्ञोपवीत सभी से वञ्चित कर दिया गया। इतना ही नहीं नारी को अब 'नरक का द्वार' और 'सहज अपावन' कहा जाने लगा। 'अधम ते अधम अधम अति नारी' 'अवगुण अष्ट नारि उर रहहीं' की उक्तियाँ प्रचिलित हुईं और यह चौपाई तो प्रसिद्ध ही है—

ढोल गंवार शूद्र पशु नारी।
ये सब ताड़न के अधिकारी॥

'साहित्य समाज का दर्पण होता है' इस आधार पर इस घोर अनर्थकारी मान्यता के लिये हम चाहें गो० तुलसीदास जो को दोषी न मानें किन्तु 'गृहस्थ यज्ञ को ब्रह्मा' नारी के प्रति वाम मार्ग काल में जन समाज की हीन भावना का होना इन चौपाइयों और शङ्कर स्वामी की प्रश्नोत्तरी से अवश्य मिलता है। कविवर गुप्त जी ने नारी की इसी दयनीय स्थिति का चित्रण करते हुए लिखा था—

CamScanner से स्कैन किया गया

नारी जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी।
आँचल में है दूध और नयनों में पानी॥

माताओ ! आप ऋणी हैं उस महान् आचार्य ऋषि दयानन्द की जिसने जहर के प्याले, तलवारों के वार, ईंट-पत्थरों की वर्षा और गालियों की बौछार सहकर आपको यज्ञ-यज्ञोपवीत, गायत्री जाप, सन्ध्योपासना, वेदपाठ और ओम् जप का अधिकार देते हुए, महर्षि मनु के इस दिव्य श्लोक को याद कराया—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राऽफला क्रिया॥—मनु०

अर्थात् जिन परिवारों में नारियों का पूजन होता है, उनका समादर किया जाता है, वहाँ देव लोग और दिव्यतायें निवास करती हैं और जहाँ नारियाँ दुखी रहती हैं, वहाँ के—उस परिवार के शुभ कर्मों के फल भी मानो नष्ट प्राय हो जाते हैं। नारी की महिमा के साथ ही महर्षि ने गृहाश्रम की महिमा को मनु महाराज के शब्दों में बड़े प्रशस्त रूप में प्रस्तुत किया—

यथा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्व जन्तवाः।
तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमाः॥

अर्थात् जैसे सभी प्राणी वायु के आश्रित जीवित रहते हैं, वैसे ही सभी आश्रमस्थ-क्या-ब्रह्मचारी, क्या वानप्रस्थ और क्या संन्यासी सभी गृहस्थ के आश्रित रहते हैं।

यथा नदीनदाः सर्वे सागरे यान्ति संस्थितम्।
तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितम्॥

अर्थात् जैसे सभी नदी और नाले अन्ततः सागर में जाकर आश्रय पाते हैं, वैसे ही सभी आश्रमस्थ जन अन्त में गृहस्थ में जाकर आश्रय पाते हैं। इसीलिये तो कहा है—धन्यो गृहस्थाश्रमः, ज्येष्ठो गृहस्थाश्रमः। गृहाश्रम सबसे ज्येष्ठ और श्रेष्ठ आश्रम है। यह सबसे बड़ी तपोस्थली, सबसे महान् साधनास्थली है। पवित्र वेदों में एक आदर्श गृहस्थ को 'स्वर्ग' की संज्ञा दी गई है।

CamScanner से स्कैन किया गया

स्वर्ग ! कहाँ है स्वर्ग ? क्या सातवें या चौथे आसमान पर या फिर गोलोक धाम या बैकुण्ठ धाम आदि किसी स्थान विशेष में ? अधिकांश मत मजहब इस संसार से अलग किसी स्थान विशेष को स्वर्ग मानते हैं। उनका कहना है कि स्वर्ग एक ऐसा स्थान है जहाँ मरने के बाद प्राणियों को नाना प्रकार के सुख भोग प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। वहां दूध-दही की नदियां बहती हैं, शहद के कुण्ड हैं, वहाँ। सुन्दर अप्सरायें—मुसलमानी मत के अनुसार ७० हूरें और ७२ गुलाम मिलते हैं वहां और अपार विलास-क्रीड़ा होने पर भी किसी प्रकार का रोग और शोक नहीं होता है, स्वर्ग में। ऐसा होता है स्वर्ग। नरक भी इन मतवादियों की दृष्टि में स्थान विशेष है, जहाँ मरने के बाद लोग अनेक विध दुःख और यातनायें भोगते हैं।

वैदिक स्वर्ग, स्वर्ग की इस कल्पना से भिन्न है। (१) प्रथम तो वैदिक स्वर्ग किसी स्थान विशेष का नहीं, अवस्था विशेष का नाम है (२) दूसरे वैदिक स्वर्ग इस संसार से बाहर और मृत्यु के पश्चात् नहीं इसी संसार में और इसी जीवन में मिल सकता है।

दुख की सामग्री जुटे, भोगें दुःख विशेष।
'नरक' नाम इसी का नहीं नरक कोई देश॥
सामग्री सुख की मिले, अरु सुख मिले विशेष।
'स्वर्ग' नाम है इसी का, पृथक् नहीं कोई देश॥

आदर्श गृहस्थ ही सच्चा स्वर्ग—

क्या आपको सचमुच स्वर्ग की तलाश है ? तब मेरी बात मानिये। मत-मतान्तरों की पगदण्डियों में उलझकर किसी काल्पनिक स्वर्ग के चक्कर में न पड़िये। तब ? सुनिये वेद माता का सन्देश—

"स्वर्ग कामो यजेत"

→स्वर्ग (सुख) का अभिलाषी यज्ञ करे अर्थात् दूसरों को सुखी बनायें। 'सुख पाने के लिये दूसरों को सुखी बनाओ।' इस यज्ञ-

CamScanner से स्कैन किया गया

भावना की नींव पर खड़ा समाज या राष्ट्र निश्चय ही स्वर्ग होगा।

हाँ, सृष्टि के राजा भगवान् को यह सम्पूर्ण सृष्टि—यह सम्पूर्ण धरती ही स्वर्ग है, इसे स्वर्ग रखा जा सकता है, स्वर्ग बनाया जा सकता है। यह वैदिक स्वर्ग सिर्फ कल्पना और मन महलाव की चीज नहीं, किन्तु एक प्रकट सत्य है।

परिवार हमारी प्रथम सामाजिक इकाई और प्रथम व्यावहारिक पाठशाला भी है। उपर्युक्त यज्ञ-भावना पर आधृत गृहाश्रम (आदर्श गृही जीवन) को वेद स्वर्ग मानता है। पवित्र अथर्ववेद के इस प्रस्तुत मन्त्र पर विचार कीजिये।

ओं यत्रा सुहार्दः सुकृतो मदन्ति विहाय रोगं तन्वास्वायाः।
अश्लोणाः अङ्गैरहुताः स्वर्गे तत्र पश्येम पितरौ च पुत्रान्॥

—अथर्व० ३।१२०।३॥

(यत्र) जिस अवस्था में (सुहार्दः) पवित्र हृदय वाले सहृदय, उदार चेता (सुकृतः सुकर्मी, सज्जन, (स्वायाः तन्वा रोगम् विहाय) अपने शरीर के रोगों को छोड़कर पूर्ण नीरोग होकर (अङ्गैः अश्लोणाः) अंग-भंग रहित सुन्दर शरीर वाले (अहुताः) शरीर-मन-वाणी की कुटिलता से रहित (मदन्ति) आनन्द करते हैं। (तत्र स्वर्गे) उस स्वर्ग में हम (पितरौ) माता-पिता (च) और (पुत्रान्) पुत्रों को (पश्येम) देखें. अर्थात् हमारे माता-पिता और सन्तान सदा सुखी रहें।

आज की कथा में हम इसी पवित्र मन्त्र पर कुछ विचार करने लगे हैं। वैदिक स्वर्ग की यह कैसी मनोरम झाँकी है। महर्षि चाणक्य ने इसी वैदिक सत्य की सम्पुष्टि की है। गृहस्थाश्रम की स्वर्गीय स्थिति का चित्र करते हुए उसकी धन्यता का वर्णन उन्होंने निम्न शब्दों में किया है—

सानन्दं सदनं सुतास्तु सुधिया कान्ता प्रियालापिनी।
इच्छा पूर्ति धनं स्वयोषिति रतिः स्वाज्ञापरा सेवकाः॥

CamScanner से स्कैन किया गया

आतिथ्यं प्रभु पूजनं प्रतिदिनं मिष्टान्न पानं गृहे।
साधोः संगमुपासते च सततं धन्यो गृहस्थाश्रमः ॥
—चाणक्य नीति अ० १२।१

जिस गृहस्थ में बुद्धिमान पुत्र हों, प्रिय भाषिणी स्त्री हो, यथेच्छ धन हो, अतिथि और साधु सेवा का स्वभाव हो, ईश्वर परायणता हो, संयम वृत्ति (अपनी स्त्री में सन्तोष) हो, नौकर आज्ञाकारी हो, मिष्टान्न व ग्रहण करने योग्य अन्नपान हो, वह स्वर्ग समान गृहस्थ बहुत ही प्रशंसनीय और धन्य है। एक अन्य श्लोक में वैदिक स्वर्ग का निरूपण यों किया है—

स्वर्ग स्थितानामिह जीवलोके।
चत्वारि चिन्हानि वसन्ति देहे ॥
दान प्रसंगो मधुरा च वाणि।
देवार्चनं ब्राह्मण तर्पणञ्च ॥
—चाणक्य नीति अ० ७।१५

अर्थात् स्वर्ग में रहने वाले लोगों की इस संसार में चार प्रकार से जांच की जाती है—(१) उनमें ईश्वर-भक्ति हो (२) उनमें ब्राह्मणों (विद्वानों) को तृप्त करने की भावना हो। (३) परस्पर माधुर्य युक्त वाणी व्यवहार (४) दानशीलता एवं उदारता हो। इन गुणों से युक्त नर-नारी जहाँ रहते हों वह गृहस्थ 'स्वर्ग' है। पर हमें स्मरण रहे कि जहाँ यज्ञ-भावना से पूरित गृहस्थाश्रम को स्वर्ग कहा है वहाँ स्वार्थ-बुद्धि 'इदं मम' अयज्ञीय वृत्ति आ जाने पर यही गृहाश्रम नरक भी बन जाता है। महर्षि चाणक्य ने इस स्थिति का चित्रण भी किया है—

अत्यन्त कोपं कटुका च वाणी,
दरिद्रता च स्वजनेषु वैरम्।
नीच प्रसङ्ग कुलहीन, सेवा,
चिन्हानि देहे नरक स्थितानाम् ॥
—चाणक्य नीति अ० ७।१६

❀ विशेष विवरण हमारी "वैदिक स्वर्ग की झाँकी" पुस्तक में पढ़ें। पता—सत्य प्रकाशन, मथुरा।

CamScanner से स्कैन किया गया

अर्थात् अत्यन्त क्रोध, कटु-वचन, दरिद्रता, दुष्टों का संग अपने जनों से वैर, कुलहीनों (धूर्तों) की सेवा, ये सब चिन्ह नरक वासियों की देह में रहते हैं। अर्थात् ऐसे नर-नारी जहाँ रहते हैं वहीं नरक है। एक अन्य श्लोक में ऐसे नरकीय गृह को श्मशान कहा है—

न विप्र पादोदकं कर्दमानि, न वेद शास्त्र: ध्वनि गर्जितानि।
स्वाहा स्वधाकार विजितानि श्मशान तुल्यानि गृहणि तानि॥

—चाणक्य नीति

अर्थात् जिन गृहों में विद्वान् ब्राह्मणों के चरण धोने से कीचड़ नहीं हो जाती, जहाँ वेद-शास्त्र की ध्वनि नहीं गूँजती, और जिस घरों में पञ्च महायज्ञ नहीं किये जाते वे घर श्मशान के समान हैं।

एक अन्य कवि ने कितने सरल शब्दों में इसी सचाई का प्रस्तुत किया है—

अन्न पुराना, घी नया, हो सज्जन भरतार।
घर में चपल तुरङ्ग* हो, स्वर्ग निशानी चार॥

पुरुष वर्ग इसी बात को यों कह सकता है—

अन्न पुराना, घी नया, हो सतवन्ती नार।
चौथे पीठ तुरङ्ग की, स्वर्ग निशानी चार॥

नरक के चिन्ह निम्न प्रकार हैं—

तन पर मैले कापड़े, सिर पर मैले बार।
देने को करजा घना, दुष्ट मिले भरतार॥

पुरुष वर्ग अन्तिम चरण को यों कह सकता है—

देना हो करजा घना, हो कलिहारी नार!

निष्कर्ष यह है कि जिस गृहस्थ के सभी सदस्य स्वस्थ, संयमी, सत्य एवं मधुर भाषी और अनृण हों, शुद्ध साधनों से जीवनोपयोगी सभी आवश्यक सामग्री प्राप्त हो, जिस गृहस्थ में उदारता, दान-

* तुरङ्ग=यातायात का शीघ्रगामी साधन।

CamScanner से स्कैन किया गया

शीलता, प्रभु भक्ति, अभिवादन-शीलता, पर दुःख-कातरता आदि सद्गुण हों, जहाँ स्त्रियाँ आदर्श पत्नी और आदर्श मातायें या सास हों पुरुष जहाँ आदर्श पति और आदर्श पिता या श्वसुर हों, जहाँ बालक-बालिकायें आदर्श पुत्र-पुत्रियाँ और आदर्श भाई-बहिन हों, जहाँ भाभी देवर, ननद-भौजाई और देवरानी-जेठानी के सम्बन्ध मधुर हों, तथा जिस गृहस्थ के सभी सदस्य एक दूसरे के प्रति, पड़ौसी समाज और राष्ट्र के प्रति कर्त्तव्य-पालन में (इसे ईश्वराज्ञा मानकर) संलग्न हों—ऐसा आदर्श गृहस्थ ही सच्चा स्वर्ग है। ऐसा स्वर्ग प्रयत्न पूर्वक इसी जीवन में साध्य है।

ऐसे आदर्श गृहस्थों की अधिकता के कारण कभी हमारा सम्पूर्ण भारत देश ही 'स्वर्ग भूमि' माना जाता था और यहाँ के सभी ३३ करोड़ निवासी ही देवता माने जाते थे।

प्रस्तुत वेद मन्त्र से प्रकट है कि गृहाश्रम ही 'स्वर्ग' है। पर कैसा गृहस्थ ? मन्त्र कहता है—'यत्रा सुहार्दः' जहाँ सौहार्द हो। परिवार के सदस्यों के हृदय परस्पर कैसे मिले हुए हों, भगवान् उपदेश करते है—

सहृदयं सामनस्यं अविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्य ऽन्यमभिहर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या॥

(परिवार के सदस्यो !) तुम सबके हृदय और मन मिले हुए और द्वेष रहित हों। तुम एक दूसरे को ऐसे चाहो जैसे अभी २ उत्पन्न बछड़े को गोमाता प्यार करती है। कैसी सुन्दर उपमा वेदमाता ने दी है। रामायण के अनेक प्रसंगों में पारिवारिक सौहार्द की बड़ी मनोरम झाँकियाँ मिलती हैं। एक प्रसंग देखिए। मेघनाद की शक्ति से मूर्छित यतिवर लक्ष्मण महावीर हनुमान् द्वारा लाई संजीवनि औषधि से मूर्छा से जाग उठे हैं। वानर लोग आ-आकर श्री लक्ष्मण के प्रति संवेदना व्यक्त कर रहे हैं और कह रहे हैं—'लक्ष्मण जी, आपको बड़ा कष्ट हुआ होगा, लक्ष्मण जी, आपको बड़ी व्यथा हुई होगी।' सुनिये

CamScanner से स्कैन किया गया

मित्रो ! लक्ष्मण क्या उत्तर देते हैं—भाइयो, यदि आपको घाव देखना हो तो मेरे देखो और यदि व्यथा जाननी हो तो श्रीराम से पूछो। मुझे क्या व्यथा हुई है, व्यथा तो महाराज श्रीराम को हुई है।' अहा ! सहृदयता, सौहार्द का कैसा उत्कृष्ट उदाहरण है, यह ! यही तो है पारिवारिक जीवन में प्रतिष्ठित यज्ञ-भावना, यही तो है जीवन कला!

व्यक्तिगत जीवन में जहाँ शरीर और इन्द्रियों की स्वस्थता, मन की पवित्रता, बुद्धि की निर्मलता और आत्मा की निष्पापता से यज्ञमय जीवन का निर्माण होता है, वहाँ पारिवारिक जीवन में 'संगतीकरण, पूजा, दानेषु' यास्क मुनि की यह व्याख्या पूरी तरह घटित होती है। अर्थात् परिवार में अपनों से बड़ों के प्रति पूजा भाव-आदर भावना, छोटों के प्रति स्नेह-दान और पारस्पारिक संगतीकरण। यही है पारिवारिक यज्ञ। यहाँ 'संगतीकरण' का आशय और थोड़ा समझ लीजिए। हम यज्ञ में समिधा, शाकल्य और घृत होमते हैं। जब तक उनका अलग २ अस्तित्व बना है, 'यज्ञ' नहीं बनता। जब उनका संगतीकरण होता है अर्थात् वे अपना पृथक्-पृथक् अस्तित्व मिटाकर एक दूसरे के लिए बलिदान करके एकाकार-एकरूप बनते हैं, तभी 'यज्ञ' कहलाता है। पारिवारिक जीवन में 'इदं न मम' की भावना को चरितार्थ करते हुए एक-दूसरे के लिये स्वार्थ-त्याग, कष्ट सहन, उदारता, विशाल हृदयता और 'मैं' को भुलाकर 'हम' का रूप ले लेना ही संगतीकरण है।

राम कहते हैं—भरत ! अयोध्या का राज्य तुम्हारा है, इदं न मम' मेरा नहीं है—क्योंकि पिताजी ने तुम्हें राज्य दिया है। भरत का उत्तर था—महाराज, यह ठीक है कि पिताजी ने मुझे राज्य दिया है, पर परम पिता परमात्मा ने आपको पहले उत्पन्न किया, आपको बड़ा बनाया, अतः हमारी कुल मर्यादा के अनुसार परम पिता ने आपको राज्य दिया है। अब आप ही सोचिये पिता बड़ा या परम पिता अतः 'इदं न मम' राज्य मेरा नहीं, आपका है। कवि ने इस प्रसंग को यों चित्रित किया है—

CamScanner से स्कैन किया गया

राजतिलक को गेंद बनाकर खेलन लगे खिलारी।
इधर राम और उधर भरत दोनों ने ठोकर मारी॥
शिक्षा दे रही जो हमको रामायण अति प्यारी॥

पारिवारिक यज्ञ भावना या उदारता और स्वार्थ-त्याग के अनेकों प्रेरक प्रसंग हमें रामायण में मिलते हैं। उन्हीं में से राम माता कौशल्या की विशाल हृदयता का एक प्रसंग विशेष महत्वपूर्ण है। महात्मा राम माँ कौशल्या के पास वन-गमन के लिए आज्ञा लेने के लिये पहुंचते हैं। जैसा कि हम बता चुके हैं, माँ कौशल्या उस समय अग्निहोत्र कर रही थीं। उससे निवृत्त होते ही माँ कहती है--'हे तात! तुम्हारे राज्याभिषेक की शुभ घड़ी में क्या विलम्ब है?' सर्वथा निस्पृह और शान्त भाव से श्री राम बताते हैं--

तापस वेष विशेष उदासी।
चौदह वर्ष राम वनवासी॥

हे माँ, मुझे अब अयोध्या का नहीं १४ वर्षों के लिये वन का राज्य मिला है। मैं आपसे अनुमति लेने के लिए आया हूं। सुनो, मेरी माताओ और मित्रो! राम माता के हृदय पर इस हृदय विदारक समाचार से, इस आकस्मिक परिवर्तन से, सभी के प्राणप्रिय राम निरपराध राम के वन गमन के समाचार से क्या बीती होगी, इसकी कल्पना आप सभी कर सकते है। पर वाह री, राम जैसे पुत्र की निर्मात्री माता कौशल्या! कितने धैर्य और गम्भीरता के वे कहती हैं-

जो केवल पितु आयसु ताता।
तो जनि जाहु जानि बड़ि माता॥

अर्थात् यदि केवल पिताजी—महाराज दशरथ ने तुम्हें वन जाने की आज्ञा दी है तो मैं कहती हूं कि वन मत जाओ, क्योंकि माता का स्थान, हमारी वैदिक संस्कृति में पिता से सहस्र गुना बड़ा है पर अगले ही चरण में माँ कौशल्या कितनी उदारता और विशाल हृदयता के साथ कहती हैं—

CamScanner से स्कैन किया गया

जो पितु मात कहेउ बन जाना।
तौ कानन शत अवध समाना॥

अर्थात् यदि माता-पिता दोनों ने तुम्हें वन जाने की आज्ञा दी है तो जाओ, मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है, वह वन तुम्हारे लिये सौ अयोध्याओं के समान सुखदायक हो। मित्रो ! आपने विचारा कि यहाँ यह 'माता' कौन टपक पड़ी ? कैकेयी जो कौशल्या के इकलौते पुत्र सर्वप्रिय निरपराध राम को, १४ वर्ष के लिये वन भेज रही हैं, उस सौतेली कैकेयी के प्रति माता कौशल्या के हृदय में कितना स्थान है कि वे कहती हैं—यदि केवल पिता ने तुम्हें वन जाने को कहा है तो मत जाओ, पर यदि माँ कैकेयी को अनुमति भी है तो अवश्य जाओ, मेरा आशीर्वाद है। यही सौहार्द भावना यही उदारता परिवार को यज्ञमय बनाती है गृहाश्रम को 'स्वर्ग' बनाती है।

महाभारत का एक प्रेरक प्रसंग भी इसी प्रकरण में सुनिये। महाराज युधिष्ठिर अपने चारों भाइयों-भीम-अर्जुन-नकुल और सहदेव सहित वनवास का जीवन बिता रहे हैं। दोपहरी का समय है। सभी भाइयों को प्यास लगी है। पास ही एक सरोवर (तालाब) को देखकर सहदेव-सबसे छोटे भाई जल लेने जाते हैं। ज्यों ही सहदेव ने घड़े को डुबोया कि इस सरोवर के स्वामी यक्षराज कहते हैं—राजकुमार ! जल पीछे भरना पहले मेरे प्रश्नों के उत्तर दो। यदि तुम मेरे प्रश्नों के उत्तर बिना दिये जल भरोगे तो तुम्हें मूर्छित कर दिया जावेगा। सहदेव जब यक्ष की बात को अनसुना करके जल भरने लगता है तो यक्षराज उसे मूर्छित कर देते हैं। यही दशा क्रम-क्रम से नकुल, अर्जुन और भीम की होती है। अन्त में महाराज युधिष्ठिर पहुंचते हैं। जब उनसे भी यक्ष—वही बात कहता है कि राजन् ! जल भरने के पहले मेरे प्रश्नों का उत्तर दो, नहीं तो तुम्हारी भी दशा तुम्हारे शेष भाइयों जैसी कर दी जावेगी—तो महाराज युधिष्ठिर सविनय कहते हैं—"मैं आपके नियम का पालन करूँगा, आप प्रश्न कीजिए मैं उत्तर देने का यत्न करूंगा।" महाभारत का यह प्रकरण

CamScanner से स्कैन किया गया

'यक्ष-युधिष्टिर संवाद' के नाम से प्रसिद्ध है। यक्ष अनेकों सुन्दर-सुन्दर प्रश्न करते हैं और महाराज युधिष्ठिर बड़ा ही तथ्यपूर्ण उत्तर देते हैं। अन्त में सन्तुष्ट होकर यक्षराज कहते हैं—'राजन् ! मैं आपकी विनय-शीलता, नियम पालन की भावना और उससे भी अधिक आपके उत्तरों से बड़ा सन्तुष्ट हूं। प्रसन्न होकर मैं आपके चारों भाइयों में से किसी भी एक भाई को मूर्छा-मुक्त करके जीवित कर सकता हूं, तुम वर माँग लो।"

सहज भाव से महाराज युधिष्ठिर कहते हैं—"यदि ऐसा है, आप एक ही भाई को जीवित कर सकते हैं तो आप सहदेव को जिला दीजिए।" इस पर यक्ष साश्चर्य पूछते हैं—राजन् ! तुमने महाबली भीम और महान् धनुर्धर अर्जुन का प्राणदान न माँगकर सहदेव का जीवन-दान क्यों माँगा ?" सुनो मेरी माताओ और मित्रो ! इसके उत्तर में युधिष्ठिर क्या कहते हैं ? "यक्षराज ! हमारी दो मातायें हैं, कुन्ती और माद्री। यह ठीक है कि आज मेरे सामने जो संकट है उसमें भीम और अर्जुन का जीवन अधिक उपयोगी है। पर माँ कुन्ती की सन्तानों में से मैं जीवित हूं तो माँ माद्री की एक सन्तान भी जीवित रहनी ही चाहिए, इसलिए मैं सहदेव का ही प्राणदान चाहता हूं। "धन्य-धन्य धर्मराज युधिष्ठिर ! आपका स्वार्थ त्याग, आपकी पारिवारिक यज्ञ भावना धन्य है ! ऐसी उदारता देखकर यक्ष ने भी प्रसन्न हो चारों ही मूर्छित भाइयों को जिला दिया।

यज्ञ की ज्वालायें खूब प्रज्वलित हों, इनके लिए शुद्ध घृत, सूखी समिधा और उत्तम शाकल्य, आवश्यक है। आर्द्रता-शून्य अर्थात् स्वार्थ शून्य व्यवहार ही पारिवारिक यज्ञों में सूखी समिधा है, पारस्परिक सौहार्द की चिकनाहट ही घृत है और पुष्टिदायक शक्ति वर्धक आदर्श दिनचर्या ही शाकल्य है जिससे परिवार की यज्ञ ज्वालायें खूब ज्योतिष्मान् होती हैं। इनमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण है आपस का स्वाथ-शून्य व्यवहार। परिवार के अन्य सदस्यों को अपने से अधिक

CamScanner से स्कैन किया गया

जो व्यवहार चाहते हैं, वह हम भी दूसरों के साथ करें। यह व्यावहारिक धर्म पारिवारिक जीवन ही नहीं, जीवन के सभी अङ्गों को सुख-शान्तिमय बनाने की कुञ्जी है।

महाभारतकार महर्षि व्यास ने भीष्म पितामह द्वारा इस व्यावहारिक धर्म का निरूपण यों कराया है—

श्रूयतां धर्म सर्वस्व श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषाम् न समाचरेत्॥

हाँ, यह व्यावहारिक धर्म सब धर्मों (विविध कर्त्तव्य कर्मों) का सार या आधार है। और यह तो स्पष्ट ही है कि व्यावहारिक धर्म तो केवल पढ़ने-सुनने की नहीं धारण करने की वस्तु है। यह धर्म है—(आत्मनः प्रातिकूलानि) जो आत्मा के विरुद्ध है, जिसे अपने लिये नहीं चाहते (परेषाम् न समाचरेत्) उसे दूसरों के लिए व्यवहार में मत लाओ। अर्थात् जो व्यवहार तुम अपने लिए चाहते हो, वही दूसरों के साथ करो। ❀

नई वधू आई। घर में उसकी सास थी और थी दादी (बुढ़िया) सास। वधू ने देखा कि दादी सास की चारपाई पौली में डाली हुई है। चारपाई टूटी और अस्त-व्यस्त है। विस्तर निरे गुदड़े ही हैं और वस्त्र चीथड़े। सबके भोजन कर लेने पर बचा-खुचा भोजन उसकी सास टूटे बर्त्तनों के ठीकरों में दादी सास को देती—बड़े अपमान पूर्ण ढंग से। दादी सास पर वह चीखती और चिल्लाती। नई वधू एक आर्य परिवार की पुत्री थी, उसे यह सब अच्छा नहीं लगा। पर करती भी क्या? उसे एक उपाय सूझा। वह उन टूटे बर्त्तनों के ठीकरों को अपनी सास की जानकारी में सँजोकर रखने लगी। एक-दो दिन तो सास ने इसे खेल ही समझा। फिर पूछा—बेटी, तू इन

❀ अंग्रेजी में भी प्रसिद्ध कहावत है—
Behave others as you want to be behaved by others.

CamScanner से स्कैन किया गया

ठीकरों का क्या करेगी। वधू ने संयत स्वर में उत्तर दिया—मां जो ! मुझे इनकी आवश्यकता होगी। सास का आश्चर्य बढ़ना स्वभाविक था। बोली पुत्री, तुम्हारे घर में क्या कमी है, आखिर इन ठीकरों का तुम करोगी क्या ? वधू ने पुनः सहज भाव से उत्तर दिया—'माँ जी, मुझे कभी इनकी आवश्यकता होगी। अब तक सास की जिज्ञासा चरम बिन्दु पर पहुंच चुकी थी। आग्रह करने पर वधू ने कहा—माताजी, आपके यहाँ का सत्कार किस प्रकार होता है, यह मैंने व्यवहार से जान लिया है। आपके परिवार की इस परम्परा को मुझे भी निभाना पड़ेगा ही। एक दिन आप दादी सास बनेंगी और मैं सास बनूँगी तब मुझे इन ठीकरों की आवश्यकता होगी। मैं आखिर कहाँ खोजूँगी। इसलिए अभी से संजोकर रखती हूं।'

वधू की बुद्धिमानी से सास की आँखें खुल चुकी थीं। अपने भविष्य के निरादृत जीवन की कल्पना कर वह काँप उठी, बस दूसरे दिन दादी सास की चारपाई बदल गई, वस्त्र और बिछौने बदले गये। अब उसे सबसे पहले सुन्दर स्वच्छ बर्त्तनों में ताजी भोजन और मेवा मिष्ठान्न मिलने लगा।

हम यदि इस उदाहरण से शिक्षा लेकर इसे जीवन व्यवहार के सभी पहलुओं में घटायें तो सचमुच हमारे घर स्वर्ग बन सकते हैं। क्या प्रत्येक सास किसी दिन वधू बनकर नहीं आई थी तब वह अपनी सास से कैसे प्यार और व्यवहार की अपेक्षा रखती थी ? काश, कि वह अपनी पुत्र-वधू को वैसा प्यार-दुलार दे सके जिसे वधू रूप में कभी वह स्वयं चाहती थी। क्या प्रत्येक वधू को एक दिन सास नहीं बनाना है ? सास बनकर वह अपनी वधू से अपने लिये जिस सम्मान को चाहेगी काश, कि आज वह अपनी सास को वह सम्मान दे सके।

क्या हर पिता एक दिन पुत्र नहीं था और क्या हर पुत्र को एक दिन पिता नहीं बनाना है ? क्या हर ननद कहीं भावज नहीं है और क्या हर भावज कहीं ननद नहीं है ?

CamScanner से स्कैन किया गया

कैसी विडम्बना है कि एक माता जब अपनी पुत्री के साथ उसके श्वसुराल वालों के दुर्व्यवहर की बात सुनती है तो तड़प उठती है, पर वही अपनी पुत्र-वधू पर घोरतम अत्याचार करने से नहीं चूकती। काश, वह सोच पाती कि यह मेरी पुत्र-वधू भी तो किसी की लाड़ली बेटी है। जिस प्रकार मैं चाहती हूं कि मेरी पुत्री को इसकी सास मुझसे भी अधिक प्यार करे, वैसे ही मेरी पुत्रवधू की माँ भी चाहती होगी। तब मुझे अपनी पुत्रवधू को अधिकतम प्यार देकर प्राप्त अवसर का सदुपयोग करना ही चाहिए।

यह व्यवहारिक धर्म न केवल परिवार में वरन् जीवन के सभी क्षेत्रों में समान रूप से पुण्य-प्रापक है। इस सिद्धान्त को मानने वाला कोई दुकानदार ग्राहक को धोखा नहीं देगा। कोई मजदूर कामचोरी नहीं करेगा। कोई मालिक मजदूर का हक नहीं मारेगा। इस सिद्धान्त का व्यावहारिक रूप यह है कि अपने को दूसरे की स्थिति में रखकर देखो कि यदि उस जगह मैं होता तो कैसा व्यवहार चाहता, बस जैसा व्यवहार तुम अपने लिए चाहते वही व्यवहार तुम उनसे करो।

इस स्वर्ण सिद्धान्त को पालना से ही निश्चय ही आज के नरक बने हुए गृहस्थ वैदिक स्वर्ग बन जायंगे। ऐसे वैदिक गृहस्थ ही सच्चे तीर्थ हैं, जहाँ पञ्चदेव पूजा—(१) माता (२) पिता (३) अतिथि (४) आचार्य और (५) पति द्वारा पत्नी की तथा पत्नी द्वारा पति की पूजा होती है।

'मातृ देवो भव' इस धरती पर माता सबसे बड़ी देवता है। गर्भ में धारण करने के समय से लेकर जब तक बालक समर्थ नहीं हो जाता तब तक मां बच्चे के लिये जो कुछ करती है उसकी गरिमा को शब्दों में बाँध सकना अशक्य है।

महाभारत में 'यक्ष-युधिष्ठिर सम्वाद' नामक एक बड़ा ही मनोहर और शिक्षाप्रद प्रसंग है। यहाँ अन्य अनेक प्रश्नों के साथ यक्ष युधिष्ठिर से प्रश्न करती हैं—'किं स्विद् गुरुतरा भूमेः' अर्थात् धरती से भारी वस्तु क्या है?

CamScanner से स्कैन किया गया

युधिष्ठिर महाराज उत्तर देते हैं—'माता गुरुतराः भूमेः' अर्थात् माँ की गरिमा पृथ्वी से भारी है, पृथ्वी सर्व सहा है। आप उसे खोदिये, खूँदिये, थूक, टट्टी पेशाब कुछ भी कीजिए सब चुपचाप सहती है। वह तो जड़ तत्व है। पर माँ तो चेतन तत्व होते हुए भी यह सब कुछ सहती है। निःसन्देह माता के ऋण से अनृण हो सकना असम्भव ही है।

हरीसिंह नलुआ ने जब दुधर्ष पठानों को अपने शौर्य से रौंद डाला तो वह एक दिन अपनी माँ से बोला—माँ, मैंने तेरे दूध को सफल कर दिया, मैं तेरे ऋण से उऋण हुआ। माँ मुसकराई, हरीसिंह ने जब पुनः कहा मां मेरे योग्य कोई सेवा बताइये तो माँ बोली—बेटा और तो कुछ नहीं आज रात्रि को तुम मेरे साथ सो जाना। हरीसिंह को बड़ा अजीब सा लगा। पर माँ की आज्ञा थी, शिरोधार्य की। शीत ऋतु थी मां ने हरीसिंह की तरफ के बिछौने का भाग पानी से भिगो दिया था। हरीसिंह ज्यों ही लेटने लगा कि चीख पड़ा—माँ यह क्या शरारत है? मां हँस पड़ी। बोली—मेरे लाल बस, इसी बूते पर कहते थे कि मैया मैं तेरे ऋण से उऋण हुआ। मेरे लाल न जाने कितनी बार तू यह शरारत करता रहा है। घोर शीत में जब तू यह शरारत करता था तो मैं स्वयं गीले में सोकर तुझे दूसरी ओर सुलाती और जब दूसरी ओर भी तू पेशाब कर देता था तो मेरे लाल मैं तुझे छाती से लगाकर सुलाती थी। तू तब भी 'शरारत कर देता था। बोलो हरिया तुमने माँ का ऋण चुका दिया?' हरीसिंह ने माँ के पैर पकड़ लिये। रुँधे कण्ठ से बोला—'मां क्षमा करो।' माँ प्रसन्न हुई, उसे कुछ अपना अहसान नहीं जताना था, बेटे का अभिमान दूर करना था।

माता निर्माति भवति

पुत्र का निर्माण करने के कारण ही नारी की संज्ञा 'माता' है। सन्तान के नाम पर कूड़ा-कबरा पैदा कर धरती माता का भार

CamScanner से स्कैन किया गया

बढ़ाने वाली नारी 'माता' नहीं है। सन्तान की चरित्र निर्माता माता की इसी महिमा को हृदयङ्गम कर महर्षि मनु ने माता को दस सहस्र आचार्यों के समान कहा है।

पंचदेवों में दूसरा देवता है—पिता। यक्ष-युधिष्ठिर सम्वाद में एक अन्य प्रश्न है—'किं स्विद् उच्चतरम् च खात्' अर्थात् आकाश से उच्चतर क्या है? युधिष्ठिर उत्तर देते हैं—'खात् पितोच्चरस्तथा' अर्थात् पिता आकाश से भी उच्चतर है।

सच में पुत्र के लिए पिता की आकाँक्षायें असीम हैं और उसी के अनुरूप माता की भाँति ही पुत्र निर्माण में पिता का दायित्व भी महान् है। पितृत्व की गरिमा भी अपार है। 'पा' रक्षणे धातु से पिता शब्द सिद्ध होता है। सन्तान की सर्वविधि पालना एवं उसका सर्व-विधि रक्षण करने से ही पिता, 'पिता' कहलाने का अधिकारी है। बालक जब घर के आंगन से बाहर जाने लगता है तब माता की अपेक्षा पिता का दायित्व बढ़ जाता है। 'पितृ देवो भव' कहकर शतपथकार ने पिता की इसी महिमा और दायित्व का प्रकाशन किया है।

यज्ञमय परिवार (वैदिक स्वर्ग) में माता और पिता की श्रद्धा पूर्वक सेवा, उनके चरणों में प्रतिदिन अभिवादन, उनकी आज्ञा का पालन ही 'पितृयज्ञ' कहते है, श्रीराम की पितृभक्ति भी दर्शनीय है। वे कहते हैं—

सुनु जननी सोइ सुत बड़भागी।
जे पितु-मातु चरण अनुरागी॥
तनय मातु-पितु सेवन हारा।
दुर्लभ जननि सकल संसारा॥

पितृयज्ञ के दो भाग हैं। (१) श्राद्ध (२) तर्पण। श्रद्धा पूर्वक माता-पिता और गुरुजनों की सेवाश्राद्ध है। जिस प्रकार माता-पिता ने हमारे शैशव की असहाय अवस्था में हमारा पालन-पोषण किया,

CamScanner से स्कैन किया गया

स्वयं कष्ट उठाकर हमें सुख पहुंचाया वैसे ही हम उनकी वृद्धावस्था की असहाय दशा में श्रद्धा पूर्वक सेवा करें, उन्हें सुख पहुंचायें साथ ही जैसे हमारे माता-पिता ने हमें सुयोग्य बनाया वैसे ही हम भी अपनी सन्तानों के रूप में राष्ट्र को सुयोग्य नागरिक दें, यह है 'श्राद्ध' और इसी प्रकार के कार्य एवं व्यवहार करना जिन्हें देख-देख कर माता-पिता को हर्ष हो, उनकी तृप्ति हो, यह है 'तर्पण'। श्री राम का पावन चरित इस विषय में भी आदर्श है।

धन्य भाग जगती तल ताके।
पितुहिं प्रमोद चरित सुनि जाके॥
आयजु माँगि करहिं पुर काजा।
देखि-देखि हर्षहिं मन राजा॥

ध्यान रहे यह श्राद्ध-तर्पण माता-पिता के जीवन काल में ही सम्भव है। 'पितर' संज्ञा भी जीवित की है। मरने के पश्चात् तो हर आत्मा अपने २ कर्मानुसार कहाँ २ जन्म लेता है, इसका किसी को ज्ञान नहीं होता। अतः मरने के पश्चात् मृतक श्राद्ध अवैदिक और दम्भ है' यह तो इस कहावत का चरितार्थ करना है—**जियत पिता से दङ्गमदंगा, मरे पिता पहुँचाये गंगा**। यह किसी भी प्रकार से ठीक नहीं। पितृयज्ञ के द्वारा एक गृहस्थ पितृ ऋण को चुकाता है।

पितृयज्ञ की भाँति ही आचार्य और अतिथि की सेवा भी आदर्श गृहस्थ का पुनीत कर्त्तव्य है। आचार्य का अर्थ है—आचारशील धर्मात्मा, परोपकारी विद्वान् 'यो आचारं ग्राहयति स आचार्यः' जो अपने जीवन और सदाचरण द्वारा अन्य को सदाचारी बनाता है, वह आचार्य है। आचार्य या गुरु की पूजा का हमारी संस्कृति में बड़ा महत्व रहा है, पर गुरुपूजा के नाम पर 'गुरुडम' महापाप है। 'काना-बाती कुक, तू चेला मैं गुर' ऐसे गठरी बाँधने वाले पाखण्डी गुरुओं से सदा बचिये। फिर वह चाहे सतसाईं बाबा हो, या जय गुरुदेव, बाल-योगेश्वर, आनन्द मूर्ति अथवा सन्तोषी माता इन सबके कुचक्र से

CamScanner से स्कैन किया गया

बचिये। हाँ, सदाचारी विद्वानों की सेवा कर्त्तव्य है। अतिथि आदर्श संन्यासी-महात्मा का नाम है, जिसने अपने जीवन को लोक सेवा के लिए समर्पित कर दिया है। हमारे इतिहास में 'अतिथि यज्ञ' के अनेकों प्रेरक उदाहरण मिलते हैं। महाभारत में सत्तू यज्ञ की कहानी आती है। महाराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ की समाप्ति पर एक नेवला जिसका आधा भाग सोने का था वहाँ बिखरे जल में लोट-पोट होने का यत्न कर रहा था। किसी ने पूछा कि यह क्या कर रहे हो। नेवला ने कहा कि ब्राह्मण ने सूक्त यज्ञ किया था, वहाँ बिखरे जल में लोटने से मेरा आधा भाग स्वर्णमय हो गया था। तभी से मैं ऐसे अवसर की खोज में रहता हूं, जिससे मेरा शेष आधा भाग भी सोने का हो जावे। यहाँ मैं यही सोचकर आया था कि धर्मराज युधिष्ठिर महाराज का इतना बड़ा यज्ञ हुआ है, वहाँ बिखरे जल में लोटने से मेरी इच्छा पूरी हो सकेगी। पर यहाँ भी मुझे निराश होना पड़ा है। जिज्ञासा करने पर नेवला ने सत्तू यज्ञ की कहानी इस प्रकार बतलाई। एक ब्राह्मण परिवार जिनमें ब्राह्मण-ब्राह्मणी के अतिरिक्त उनका एक पुत्र और पुत्र-वधू कुल मिलाकर चार प्राणी थे। कई दिन पश्चात् इन्हें कुछ सत्तू प्राप्त हुआ। चारों ही भोजन करने बैठे ही थे कि एक अतिथि द्वारपर आपहुंचा और क्रमशः सभी का भाग खागया। ब्राह्मण परिवार आज भी भूखा रह गया। पर 'अतिथि यज्ञ' के सम्पादन से चारों ही प्राणी परम सन्तोष का अनुभव कर रहे थे। अतिथि ने कुल्ला किया और धन्यवाद देकर चल दिया। ठीक इसी समय अनायास मैं उधर पहुंच गया। बस जहाँ अतिथि ने जल से कुल्ला किया था, उसी स्थान पर लोटने से मेरा आधा शरीर सोने का हो गया था। माताओ और सज्जनो निश्चय ही यह एक काल्पनिक कहानी है, पर इससे 'अतिथि यज्ञ' की महिमा पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।

मित्रो ! आपने समझा होगा कि जैसे ब्रह्मयज्ञ और देव यज्ञ व्यक्तिगत जीवन के आर्यकरण की आधार शिला है, वैसे ही इन दोनों

CamScanner से स्कैन किया गया

के साथ साथ पितृयज्ञ और अतिथि यज्ञ पारिवारिक जीवन का प्राण है। तो अब तक हम पञ्चदेव पूजन के क्रम में माता-पिता, आचार्य और अतिथि पूजन के सम्बन्ध में विचार कर चुके हैं। अब हम पत्नी द्वारा पति की देवता के रूप में और पति द्वारा पत्नी की देवी रूप में पूजा द्वारा गृहाश्रम में यज्ञमयता लाने एवं उसे स्वर्ग बनाने के सम्बन्ध में विचार करेंगे।

पति और पत्नी दोनों ही शब्दों का निर्माण 'प' धातु से हुआ है जिसका अर्थ है—रक्षा करना। वास्तव में दोनों ही एक दूसरे की पाप-पथ से रक्षा करने और धर्म-पथ में आगे बढ़ाने में सहायता कर अपनी पति या पत्नी संज्ञा को सार्थक करते हैं। धर्म-पत्नी शब्द का तो अर्थ ही है—धर्म की रक्षा करने वाली। अपना प्राण देकर भी चूड़ावत सरदार को कर्तव्य-पथ पर आगे बढ़ाने वाली हाड़ारानी, महाराणा प्रताप को बेटो चम्पा की रोटियों के बनविलाव द्वारा ले जाने पर सन्धि-पत्र लिखने से रोकने वाली महाराणी और सतीत्व की रक्षार्थ चौदह हजार देवियों सहित 'जौहर व्रत' करने वाली पद्मिनी इतिहास के पृष्ठों में अमर हैं। × ×

मित्रो और माताओ 'पतिव्रता' और पतिव्रत धर्म का अर्थ अपने शरीर को दुष्ट भावना से पर पुरुष से न छुआना तो है ही, पर इसका व्यापक अर्थ है पति के जीवन व्रत की प्राण देकर भी रक्षा करना। यदि आज की देवियाँ 'पतिव्रत धर्म' के सच्चे रहस्य को समझ लें तो वे अपना फैशन बनाने के लिए पति को काला बाजार कर अनर्थ कमाने के लिये बाध्य करने के पाप से बच सकेगीं। विवाह संस्कार की हृदय स्पर्श विधि में पति यही तो कामना करता है—'मम व्रते ते हृदयं दधामि' अर्थात् हे देवि ! मैं अपने जीवन व्रत की पूर्ति के लिए तुम्हारा हार्दिक सहयोग चाहता हूं।

माता सीता और सावित्री तो देवी अनुसूया और मैत्रेयो की भाँति ही पतिव्रताओं में शिरोमणि हैं। श्रीराम द्वारा अनेक विध भय

CamScanner से स्कैन किया गया

दिखलाने और सासु-श्वसुर सेवा आदि अनेक कर्त्तव्यों का स्मरण दिलाये जाने पर भी सीता कहती हैं—

प्राननाथ करुनायतन सुन्दर सुखद सुजान।
तुम बिन रघुकुल कुमुद विधु सुरपुर नरक समान॥
जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते पिय बिनु तियहिं तरनि ते ताते।
जिय बिनु देह नदी बिनु वारी तेसिय नाथ पुपष विनु नारी॥

मित्रो! पतिव्रत धर्म के ये कुछ प्रेरक उदाहरण हैं। पर ध्यान रहे पत्नी व्रत धर्म भी उतना ही महत्वपूर्ण है। सीताजी की श्री राम में अगाध निष्ठा है तो श्रीराम का सीता प्रेम भी उतना ही पवित्र और उत्कृष्ट है। जब भरत जी माता कैकेयी से पूछते हैं कि आपने श्री राम को किस अपराध में वनवास दिया, क्या वे पराई स्त्रियों में तो नहीं उलझ गये? कैकेयी उत्तर देती हैं—

न रामः परदाराश्च अचक्षुर्म्या मपि पश्यति।

अर्थात् राम अन्य स्त्रियों की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखता

आर्य राम के इस एक पत्नी व्रत में शत्रु पत्नी मन्दोदरी को देखता कितना गहन विश्वास है। वह सुलोचना को रामदल में निः-शङ्क जाने की प्रेरणा देते हुए कहती है—

एक नारि व्रत रघुवर केरा।
लषण सुयश तुम सुनेउ घनेरा॥

सीता हरण के प्रसंग में राम लक्ष्मण को कहते हैं—

न त्वहं तां विना सीतां जीवेयं हि कथञ्चन।

हे लक्ष्मण! मैं सीता के बिना कैसे भी नहीं जी सकूँगा।

सीता वियोग राम के लिए असह्य है। वे अति साधारण लोगों की भाँति जंगल के पशु-पक्षियों तक से सीता का पता पूछते हैं—

हा गुन खानि जानकी सीता राशि रूप व्रत नेम पुनीता।
हे खग मृग हे मधुकर स्त्रेनी तुम्ह देखी सीता मृग नैनी॥

CamScanner से स्कैन किया गया

मित्रो और माताओ ! गृहस्थ जीवन हम किस कौशल या कला के साथ जिससे जियें वह बन्धन न होकर मोक्ष का द्वार सिद्ध हो सके, गृहस्थ योग या गृहस्थ यज्ञ के उस स्वरूप पर हम विचारकर रहे हैं। इस यज्ञ की सफलता के लिये वेद माँ का उपदेश है—

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः।
जाया पत्ये मधुमती नाचं वदतु शन्तिवाम् ॥

पुत्र पिता का आज्ञाकारी हो, माता में श्रद्धा रखे। पत्नी मधुर-भाषिणी हो, पति शान्त और मधुर-व्यक्तित्व वाला हो।

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया ॥

भाई-भाई के साथ, बहिन-बहिन के साथ तथा भाई-बहिन परस्पर द्वेष न करें। आपस में सदा सुखदायक, कल्याणकारी वाणी बोलें—

इन मन्त्रों के प्रकाश में यों तो परिवार के सभी सदस्य मधुर भाषण और मधुर व्यवहार का महत्व समझें पर पत्नी के लिये तो वेद माता ने विशेष रूप से विधान किया है कि वह मधुर भाषिणी हो, माधुर्य की खान हो।

माताओ ! बहुत सी देवियाँ किसी स्याने दिवाने या गण्डे तावीज वाले के पास जाकर कहतीं हैं–"बाबा कोई ऐसा ताबीज दे दो जिससे मेरी सासु वश में आ जावे, या पति वश में आ जावे।" पर वे भूलती हैं मधुर भाषण और मृदु व्यवहार ही सच्चा वशीकरण है। गो० तुलसीदास ने कहा है—

तुलसी मीठे वचन ते सुख उपजत चहुं ओर।
बशीकरण एक मन्त्र है, परिहरु वचन कठोर ॥

महात्मा कबीर भी इसी के समर्थन में कहते हैं—

कागा का को धन हरे कोयल का का देय।
मीठे बैन सुनाइ के जग बश में कर लेय ॥

CamScanner से स्कैन किया गया

ऐसी बानी बोलिये मन का आपा खोय ।
औरन को शीतल करे आपहु शीतल होइ ।।

मित्रो और माताओ ! अब हम पारिवारिक शिष्टाचार और व्यवस्था के कुछ सूत्र बताकर आज की कथा को विराम देंगे ।

१—परिवार के सभी सदस्य पारिवारिक चर्या का निष्ठा-पूर्वक पालन करें अर्थात् परम पवित्र ओम् के चिन्तन के साथ प्रातः सूर्योदय के पूर्व जागें, पवित्र गायत्री मन्त्र का कुछ काल जप और चिन्तन करें, गुरुजनों का अभिवादन, उषःपान, शौच, दन्त धावन, नेत्र-प्रक्षालन मालिश, आसन-व्यायाम, घर्षण स्नान, सन्ध्योपासना ईश्वर स्मरणपूर्वक शुद्ध सात्विक आहार, सायं इसी प्रकार नित्य-कृत्य, पारिवारिक सत्सङ्ग, ओङ्कार जप, शयन आदि नियम पूर्वक समय पर पूर्ण उत्साह और निष्ठा पूर्वक करें ।

२—पिताजी, माताजी या सास-श्वसुर के पुकारने पर—'जो' आया जी' या जी आई जी' अथवा 'हाँ जी, आई जी, ऐसा उत्तर बड़े सौम्य स्वर में देना चाहिए ।

३—माता पितादि या सास-श्वसुर पुत्र, पुत्री और पुत्र-वधू से बात-चीत करते समय बेटा-बेटी (बिटिया) आदि शब्दों का उपयोग करें । विशेषतः किसी बात को समझाते समय ।

४—गाली गलौज या अपशब्दों का प्रयोग सर्वथा निषिद्ध है । छोटों के साथ भी सुष्ठु और कोमल वाणी का प्रयोग हो ।

५—मकान यथा सम्भव एक ही मंजिल का हो, जिससे किसी को चिल्लाकर या चोखकर न बुलाना पड़े ।

६—किसी अतिथि के परिवार में आने पर उसके स्वागतादि में सभी समान रूप से रुचि प्रदर्शित करें ।

७—पर्दे की प्रथा अवैदिक और हानि कारक है किन्तु आज को लेडियों की अर्धनग्न-प्राय बेपर्दगी तो और भी हानि कारक एवं घृणात्मक है । अन्य व्यवस्थाओं की भाँति यहाँ भी मध्यम मार्ग ही

CamScanner से स्कैन किया गया

श्रेयस्कर है। स्त्रियाँ सिर ढककर रखें किन्तु मुख खुला हुआ तथा उनके शरीर का कोई अङ्ग खुला न रह, यह वेदादेश है। स्त्रियों की दृष्टि नीची रहे—लज्जा भार से नत, यह आवश्यक है।

८—बड़ों के सिरहाने कभी न बैठें। बड़ों के आने पर उठकर खड़े हों। उनके बैठ जाने पर ही बैठें। उच्चासन बड़ों को ही दें। मितभाषी होना सदैव ही अच्छा है। मुख्यतया बड़ों की चर्चा के ही बीच बहुत आवश्यक होने पर उनके द्वारा कुछ पूछे जाने पर ही बोलें

९—पति के कार्यालय से या कार्य व्यापार से घर लौटने पर पत्नी उठकर प्रसन्न मुद्रा में उनका स्वागत करे। उस समय अन्य कार्यों का विचार न कर पति आज्ञा पालन और सेवा शुश्रूषा का ही विशेष ध्यान रखे। सम्मिलित परिवार में अन्यों का भी यथायोग्य समादर करे।

१०—पारिवारिक बजट परिवार के सभी सदस्य बधुयें भी मिलकर बनायें। व्यवस्था मुख्यतः ज्येष्ठ पुत्र और उसकी पत्नी करें। अन्य सभी व्यवस्था में आवश्यक सहयोग दें।

११—बीमा आदि की योजनाओं से यथोचित लाभ लिया जावे।

१२—सप्ताह में एक दिन या मास में दो दिन या फिर कम से कम महीने में एक बार तो अवश्य ही वन-भ्रमण, नदी तट भ्रमण आदि का पुरोगम रखें, जिससे वातावरण में ताजगी बनी रहे। वर्ष में १५ दिन या एक महीने का देशाटन आदि का कार्यक्रम सपरिवार रखा जासके तो अत्युत्तम ! पारिवारिकचर्या यथावत् बाहर भी चले।

१३— 'सत्यनारायण कथा' आदि की भाँति प्रतिवर्ष परिवार में किसी विद्वान् या महात्मा द्वारा 'वेद कथा' का आयोजन अवश्य रखें सम्पूर्ण वातावरण बड़ा श्रद्धोपेत ही हो।

१४—बातचीत पत्र व्यवहार एवं व्यापार आदि में हिन्दी भाषा का ही प्रयोग करें। मम्मी-डैडी, पप्प-पापा शब्दों का प्रयोग नहीं हो, बच्चों के नाम पिण्टू चिण्टू आदि के रूप में नहीं बिगाड़े।

CamScanner से स्कैन किया गया

१५—यथासम्भव गो पालन करें, यज्ञशाला भी बनायें।

अत्यावश्यक—'वैदिक स्वर्ग' के सभी सदस्य-सदस्यायें ऋषि दयानन्द के उपकारों को सदैव स्मरण रखें और आर्यसमाज के सत्सङ्गों तथा सभी आयोजनों में भाग लें तथा मुक्त हस्त से दान दें। वैदिक धर्म पारिवारिक धर्म हो। वैदिक पर्वों और त्यौहारों को सोत्साह मनाया जावे तथा वैदिक संस्कारों के माध्यम से 'वैदिक-स्वर्ग' निर्माण द्वारा वह वैदिक युग-पुनः इस धरती पर उतर सके जिसके लिये लिखा गया है—

रूये जमीं से आती एक वेदकी सदा थी।
हर शर अदब से वेदों के रूबरू झुका था॥

वही आदर्श आर्य परिवार

वही आदर्श आर्य परिवार!
वेद-वाटिका में नित खिलते आभनव सुमन विचार।
पञ्च यज्ञ का पूण प्रेम से होता सविधि विधान।
सन्ध्या श्रद्धा सहित सदा हो प्रभु गुण महिमा गान—
हवन से हो सुरभित गृह-द्वार। वही०
'मा स्राता भ्रातरं द्विक्षन्' का हो आदर्श महान्।
रहें प्रेम से राम व लक्ष्मण भाई भरत समान—
उमंग का उमड़े उदधि अपार। वही०
हो सुशील शुचि आज्ञाकारी जहाँ गुणी सन्तान।
मात-पिता की सेवा में रत 'श्रवणकुमार' समान—
करे कुल का अभिनव उद्धार॥वही०
हो धन-धान्य धर्म से अर्जित देश जाति के हेतु,
होवे षोडश संस्कारों से सज्जित जीवन सेतु—
'सूर्य' सम चमके आर्य उदार॥ वही०
पति-पत्नी में प्रेम रहे नित, हो गृहस्थ सुखधाम,
शिशुगण शशि सम करें किलोलें लीला ललित ललाम।

CamScanner से स्कैन किया गया

ई वैदिक पुस्तकालय मुम्बई
सम्पर्क - 9029421718

पाँचवा दिन—

जीवन कला (४) राष्ट्र धर्म

सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञं पृथिवीं धारयन्ति।
सा नो भतस्य भव्यस्य पत्युरु लोकं पृथिवी नः कृणोतु॥

सामूहिक गीतिका

वह शक्ति हमें दो दयानिधे ! कर्त्तव्य मार्ग पर डट जावें।
पर सेवा पर उपकार में हम, जग-जीवन सफल बना जावें॥
हम दीन-दुखी निबलों विकलों के सेवक बन सन्ताप हरें।
जो हैं अटके भूले भटके उनको तारें खुद तर जावें।
छल-दम्भ-द्वेष पाखण्ड झूठ, अन्याय से निशिदिन दूर रहें।
जीवन हो शुद्ध-सरल अपना, शुचि प्रेम-सुधा रस बरसावें॥
निज आन-कान मर्यादा का, प्रभु ध्यान रहे, अभिमान रहे।
जिस देशजाति में जन्म लिया, बलिदान उसी पर हो जावें॥

मान्या मातृशक्ति और सज्जनो ! वेद माता के पावन प्रकाश में हम विचार कर चुके हैं कि मनुष्य जन्म एक अमूल्य निधि है। इस जीवन का चरम लक्ष्य है—शांति धाम प्रभु की प्राप्ति जिसका साधनोपाय है—यज्ञ। पर यज्ञ का अर्थ केवल भौतिक यज्ञ या अग्नि-होत्र ही नहीं है। वेद माता उपदेश करती है कि हम देवयज्ञ तो करें, ही उसके साथ ही अपने जीवन के पाँचों अङ्गों—व्यक्तिगत जीवन, पारिवारिक जीवन, सामाजिक जीवन, राष्ट्रिय जीवन और वैश्व जीवन में भी यज्ञ को, यज्ञ भावना को प्रतिष्ठित करें। यही जीवन जीने की कला है। व्यक्तिगत जीवन और पारिवारिक जीवन में हम

Camscanner से स्कैन किया गया

किस प्रकार यज्ञमयता लायें, यह विचार हम कर चुके हैं। अब आज की कथा में सामाजिक जीवन और राष्ट्र-जीवन को यज्ञमय बनाने के सम्बन्ध में कुछ चिन्तन करेंगे।

आत्मीयता का विस्तार ही सच्चा अध्यात्म है। बालक जब छोटा होता है तो उसकी दुनियाँ सिर्फ अपने तक सीमित होती है उसे कोई भी चीज दो यह सबको मुँह में डालता है। अपना मुँह, अपना आपा 'इदं मम' ही मानो शिशु जीवन का सार है। बालक कुछ बड़ा हुआ। अब वह भाई-बहिनों को बाँटकर खाता है, अकेला नहीं। 'इदं न मम' की यज्ञीय भावना का यह आरम्भ है वही बालक-बालिका जब माता-पिता बनते हैं तो स्वयं कष्ट सहकर भी बच्चों को सुखी रखना चाहते हैं, स्वयं भूखा रहकर भी बच्चों को खिलाना चाहते हैं। यहाँ आत्मीयता का यज्ञ भावना का और भी विकास हुआ। जब यह आत्म भावना और भी विकसित होती है और हम अपने पड़ौसी या ग्राम वासियों की पीर को अपनी पीर, उनके आंसू को अपना आंसू बना लेते हैं तो यह होती है सामाजिक जीवन में यज्ञ की प्रतिष्ठापना और जब हर देशवासी का सुख-दुख हमारा सुख-दुख बन जाता है, तो सम्पूर्ण राष्ट्र ही हमारे विराट् व्यक्तित्व में समा जाता है। जिसने जीवन जीने की कला सीखी है वह अपने व्यक्तिगत हितों को परिवार के सदस्यों के लिए और व्यक्तिगत एवं पारिवारिक हितों को समाज एवं राष्ट्र हित की वेदी पर निछावर कर देता है। उसका चिन्तन, उसका भाषण, उसके कर्म एवं सम्पूर्ण गतिविधियाँ राष्ट्रमय हो जाती हैं। ऐसे समाज पुरुष या राष्ट्र पुरुष को पाकर कोई भी समाज या राष्ट्र धन्य हो उठता है। क्या विशेषतायें होनी चाहिये ऐसे राष्ट्र पुरुष में ? वेद माँ के शब्दों में—

सत्यं वृहदृतमुग्र दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञ पृथिवीं धारयन्ति।
सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्युरुं लोकं पृथिवी नः कृणोतु॥

अथर्व० १२।१

यह सात विशेषतायें उसमें होनी चाहिए। (१) वृहद् सत्य,

CamScanner से स्कैन किया गया

(२) महान् ऋत (३) उग्रता = तेजस्विता (४) दीक्षा (५) तप (६) ब्रह्म-शक्ति (७) यज्ञ। वेद मां कहती है कि इन सात विशेषताओं से युक्त राष्ट्र पुरुष (पृथिवीं धारयन्ति) राष्ट्र को धारण करता है। वह राष्ट्र के अतीत गौरव में वृद्धि करता हुआ, महान् भविष्य की रक्षा करता है, भविष्य का निर्माण करता है और मातृ-भूमि को हम सबके लिए सुखद, विस्तृत और प्रकाश युक्त बनाता है।

राष्ट्र के लिए जीवन जीने वालों के लिये जीवन का 'सत्य' केवल रोटी कपड़ा मकान तक सीमित नहीं रहता वे विराट् सत्य के पुजारी बन जाते हैं। राष्ट्र के जन-जन में वे सत्य स्वरूप प्रभु की झाँकी करते हैं। जन-जन का कल्याण हो उस सत्यशील महात्मा की जीवन-साधना बन जाती है।

उनका जीवन ऋतयुक्त होता है। प्रभु के शाश्वत 'ऋत' नियमों का ज्ञान और उसके अनुसार ही उनका जीवन व्यवहार बड़ा नियमित और सन्तुलित होता है। उनकी दिनचर्या बड़ी आदर्श होती है। वे 'ऋतावृधः' ऋताचरण या सत्याचरण को बल देने वाले और 'अनृत द्विषः' अनृत या पापाचरण को विनष्ट करने वाले होते हैं।

उग्रता—तेजस्विता, पाप-ताप के विरुद्ध स्वर बुलन्द करने की उग्रता क्षमता अथवा क्षात्रधर्म को भावना उनमें होती है। उनका जीवन राष्ट्र सेवा-व्रत में दीक्षित होता है। इस सेवा व्रत को वे घोर से घोर कष्ट-अपमान और लाञ्छनायें सहकर भी निभाते हैं।

उनमें से कुछ क्षात्र धर्म का पालन करने वाले होते हैं तो कुछ ऐसे तत्वदर्शी होते हैं जो अपनी विद्या और संयम की ज्योति सभी में फैलाते हैं। इस प्रकार वे ब्राह्मण धर्म का भी पालन करते हैं।

इन सभी सद्गुणों या विशेषताओं का आधार है—यज्ञ, यज्ञ भावना। मित्रो और माताओ ! हमारे महान् राष्ट्र-यज्ञ में एक-दो नहीं ऐसे अनेकों पावन व्यक्तित्वों ने अपनी जीवन हवियाँ चढ़ाई हैं, जिनसे प्रेरणा लेकर आज भी हम नई चेतना, स्फूर्ति प्राप्त करते हैं।

CamScanner से स्कैन किया गया

राष्ट्र-जीवन के तीन महाशत्रु हैं—(१) अज्ञान (२) अन्याय (३) अभाव, यज्ञोपवीत के तीन धागे जहाँ ईश्वर जीव, प्रकृति इन तीनों की अनादि सत्ता में आस्था रख प्रकृति को साधन मानकर परमात्मा की प्राप्ति की प्रेरणा करते हैं, जहाँ ये तीन धागे जीवन में ज्ञान-कर्म-उपासना एवं सत्य शिवं सुन्दरम् के समन्वय का सन्देश देते हैं, जहाँ ये तीन धागे पितृ-यज्ञ द्वारा पितृ ऋण से, देव यज्ञ द्वारा देव ऋण से एवं ब्रह्मयज्ञ या स्वाध्याय द्वारा ऋषि ऋण से अनृण होने की भावना जगाते हैं वहाँ ये त्रिसूत्र (तीन धागे) राष्ट्र के इन तीनों महा-शत्रुओं में से किसी एक से जूझने का व्रती बनने की प्रेरणा करते हैं।

मित्रो और माताओ ! समाज या राष्ट्र के इन तीन शत्रुओं अज्ञान अन्याय और अभाव में से अज्ञान सबसे प्रबल शत्रु है। अज्ञान से ही अन्याय उत्पन्न होता है। अन्याय से अभाव आता है, यज्ञोपवीत धारण कराते हुए आचार्य शिष्य को व्रती बनाता है कि वह अपनी रुचि, स्वभाव और क्षमता या गुण-कर्म-स्वभाव के अनुसार इन तीनों में से किसी एक शत्रु को राष्ट्र जीवन में से विनष्ट करने में अपना जीवन लगायेगा। यह जीवन व्रत ही शिष्य का 'स्वधर्म' कहलाता है इस जीवन व्रत का शिष्य द्वारा चयन या वरण किया जाता है। अतः इस चयन-व्यवस्था को वर्ण-व्यवस्था भी कहते हैं। जो बालक अपने गुण-कर्म-स्वभाव के अनुसार अज्ञान-नाश का व्रत लेता है वह ब्रह्म—वेद के पठन-पाठन और प्रचार प्रसार की मुख्यता के कारण 'ब्राह्मण कहलाता है जो बालक राष्ट्र-जीवन में से अन्याय को मिटा देने, प्रजाजनों का परिरक्षण करने, संतप्त और दुखी जनों का त्राण करने का संकल्प लेता है उसकी संज्ञा क्षत्रिय है। इसी प्रकार धनोपार्जन कला में दक्ष बनकर शुद्ध साधनों द्वारा धन उपार्जित कर राष्ट्र-वासियों के अभाव को दूर करने के लिए संकल्पित जन 'वैश्य' है और इन तीनों की अपनी लक्ष्य प्राप्ति के लिए शरीर द्वारा सेवा करने वाला शूद्र' है। ये चारों ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, अपनी-२

CamScanner से स्कैन किया गया

क्षमतानुसार पूर्ण श्रद्धा से राष्ट्र यज्ञ में हवियाँ देते हैं, कर्तव्य भावना से यज्ञ रूप परमात्मा की सृष्टि की सेवा करते हैं। यही यज्ञोपवीत रहस्य है। प्रभु की प्रजा की यह सेवा ही सच्ची प्रभु भक्ति है। अपने ज्ञान, अपने बल, अपने अर्थ और अपनी सेवा साधना से प्रभु की प्रजा को प्यार करने वाला ही प्रियतम प्रभुका प्यार पानेका अधिकारी है।

सज्जनो ! संसार की किसी भी वस्तु पर दृष्टि डालिये तो हमें लगेगा कि उसके निर्माण के पीछे निर्माता का, रचयिता का कोई उद्देश्य है। जब हर वस्तु की रचना सोद्देश्य है, जब साधारण से साधारण रचयिता का उसकी रचना के पीछे कोई उद्देश्य है तो उस महान् रचयिता की सर्वश्रेष्ठ रचना–हमारा यह मानव शरीर, यह मानव-जीवन क्या निरुद्देश्य है ? नहीं २ मित्रो सृष्टि के राजा ने हमारी रचना अपनी सृष्टि की सेवा के लिये की है। भगवान् स्वयं कहते हैं— **'मह्यं दत्वा व्रजत ब्रह्म लोकम्'** माताओ और मित्रो ! हमारे पास जो आयु प्राण प्रजा पशु धन कीर्ति ब्रह्मतेज आदि है। जो भी विद्या बल और भौतिक विभव है, वह सभी भगवान् का है। भगवान् की वस्तु हम भगवान् को दे डालें, अर्थात् भगवान् की प्रजा की, राष्ट्र की सेवा में लगा दें और भगवान् को पा लें। इस राष्ट्र धर्म के पालन में ही जीवन की धन्यता है, यही जीवन जीने की कला है।

राष्ट्र धर्म में दीक्षित महर्षि कणाद राष्ट्र यज्ञ में, साहित्य-साधना या वैदिक वाङ्मय के सृजन के रूप में अपनी हवि चढ़ाने के लिए कृत संकल्प हैं। भौतिक अभाव उन्हें इस लोक सेवा व्रत से विरत नहीं कर सकते। खेतों में से शिलायें चुन लिये जाने पर जो कण इधर उधर बिखरे रह जाते है ये उन्हीं कणों को जुटाकर खायेंगे इसीलिए तो इनका नाम 'कणाद' है। अपनी भौतिक आवश्यकताओं को लगभग शून्य तक पहुंचाने वाले इस देव पुरुष ने वैदिक वाङ्मय में 'वैशेषिक दर्शन' जैसी अमूल्य निधि देकर अज्ञान से जूझने का

CamScanner से स्कैन किया गया

सफल प्रयास किया था। अन्य दर्शनकार एवं उपनिषद्कार ऋषियों की जीवन गाथायें भी ऐसी ही यज्ञमय हैं। ऋषि याज्ञवल्क्य का तो यज्ञ ही वल्कल (वस्त्र) बन गया था। उनके जीवन की हर गति-विधि मानो 'यज्ञ' बन गई थी। × × ×

राष्ट्र धर्म में दीक्षित श्रीराम दण्डकारण्य में प्रवेश करते हैं। यहाँ **'अस्थि समूह देखि रघुराया'** रावण के अन्याय के शिकार ऋषि-मुनियों की हड्डियों के ढेर को देखकर अपने यज्ञोपवीत के समय के व्रत को दुहराते हैं—

निसिचर हीन करौं महि, भुज उठाइ प्रन कीन्ह।

महर्षि वाल्मीकि के शब्दों में राष्ट्र पुरुष राम उद्घोषणा करते हैं—

क्षत्रियर्धार्यते चापं नार्तशब्दो भवेदिति

क्षत्रिय जब धनुष को उठाता है तो किसी दुखी की करुणा भरी पुकार सुनने को नहीं मिलती है। × × ×

राष्ट्र धर्म में दीक्षित नव स्नातक भट्टाचार्य वेदभाष्य में तल्लीन थे। उनकी विधवा माता आईं और बोलीं—'वत्स ! तेरे विवाह की तैयारियाँ हो रही हैं; आगामी सोमवार को संस्कार होना निश्चय हुआ है।' 'तथाऽस्तु' अनायास ही आचार्य के मुख से निकला।

विवाह के कुछ ही दिन बाद आचार्य की माता महाप्रयाण कर गयीं। आचार्य ने स्वधर्मिणी को अपने अभिमुख आसन पर बिठाकर कहा—'देवि ! मैंने चारों वेदों का अविकल भाष्य समाप्त होने तक अखण्ड ब्रह्मचर्य का सुसंकल्प धारण किया हुआ है। ब्रह्मस्थ हुआ मैं ब्रह्म ज्ञान (वेद ज्ञान) का अनुवाद कर रहा हूं। मुझे अपने शरीर की रक्षा का लेश मात्र भी भान नहीं रहता। अब तक मातु-श्री मेरी देख-रेख रखतीं थी, अब तुम रखना।' अति प्रसन्न-वदन और श्रद्धापूर्ण हृदय से देवी ने उत्तर दिया 'तथास्तु देव !'

CamScanner से स्कैन किया गया

६८ वर्ष की आयु में पूर्णिमा की सायं भट्टाचार्य ने चारों वेदों का भाष्य समाप्त किया। उस रात पति-पत्नी को बड़ी निश्चिन्तता से निद्रा आई। रात्रि के चतुर्थ प्रहर में आचार्य की निद्रा भङ्ग हुई। छत पर चटाई पर लेटे-लेटे उन्होंने इधर-उधर देखा, चन्द्रिका मुस्करा रही है। प्रकृति हंस रही है। शीतल समीर अठखेलियाँ कर रहा है। वाम पार्श्व में एक तपस्विनी चटाई पर लेटी हुई है।

आचार्य ने अपने और अपनी धर्मिणी के श्वेतकेशों को देखकर मन ही मन कहा, 'दोनों के ही शिर चन्द्रिका के समान श्वेत हो गये हैं।'

देवी ने अंगडाई ली और पति की ओर मुख किया। आचार्य ने अपनी वाम भुजा फैलाई। परन्तु पूर्व इसके कि वह देवी के शरीर का स्पर्श कर सकते, देवी उठकर खड़ी हो गई, दोनों कर जोड़ पति को प्रणाम करती हुई बोलो—देव ! आयु के अन्तिम प्रहर में भी इन दोनों अछूते जीवनों को अछूते ही बने रहने दो। अब तक वेद-भाष्य में लगे रहे। अब वेद प्रचार में लग जाइये।' 'तथाऽस्तु' कह आचार्य प्रवर उठकर खड़े हो गये।

दूसरी ही प्रातः दोनों ने यथा विधि संन्यास लिया और शेष समस्त जीवन वेद प्रचार में लगाया। यज्ञीय जीवन का अनुपम आदर्श

पाटलिपुत्र—के राजभवन में दरबार लगा हुआ था। पच्चीस वर्ष का युवक सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य सिंहासन पर विराज रहा था। वाम पार्श्व में सैल्यूकस की पुत्री सम्राज्ञी के रूप में सुशोभित थी। चाणक्य ने अपने हाथ से चन्द्र के शिर पर राजमुकुट रखकर अपनी चोटी में गाँठ लगाई कहा— यूनानी सेनापति सेल्यूकस यूनान की सेना सहित यूनान चला गया। आर्यावर्त आज विदेशियों के त्रास से सर्वथा मुक्त है, देश के समस्त राजाओं ने सम्राट् चन्द्र की मांडलिकता स्वीकार कर ली, मेरा कार्य पूरा हो गया, चन्द्र चिरंजीवी हों।

सम्राट् खड़ा हुआ, महर्षि चाणक्य को राजगुरु घोषित करने के लिए, परन्तु दरबार भवन में चाणक्य दिखाई न दिये।

CamScanner से स्कैन किया गया

कुछ मास पश्चात् गुप्तचरों ने सम्राट् चन्द्र को सूचना दी कि महर्षि चाणक्य गङ्गा के तीर, अमुक शिखर पर निवास करते हैं और प्राय: ध्यान मग्न रहते हैं।

सम्राट् चन्द्र एक प्रात: अपने मन्त्रियों तथा सामन्तों सहित महर्षि चाणक्य की कुटीर पर पहुंचे तो देखा, वे समाधिस्थ हैं। पर्याप्त दिन चढ़े समाधि से निवृत्त हो, महर्षि ने अपने नेत्र खोले, तो सम्राट् चन्द्र तथा उनके साथी महर्षि को प्रणाम कर उनके अभिमुख एक पंक्ति में बैठ गये।

"ऋषे ! मैं आपके चरणों में यह निवेदन करने आया हूं कि आप अपने चन्द्र के साम्राज्य के राजगुरु पद को सुशोभित करें और राजधानी के समीप उस सुरम्य आश्रम में विराजें। यह साम्राज्य आप ही की सुनीति से सम्पादित हुआ है आप ही की सुसम्मति से मैं सुचारुता के साथ इसका संचालन कर सकूंगा" सम्राट् चन्द्र ने निवेदन किया।

'तुम चिञ्जीवी होओ चन्द्र ! और चिरस्थायी हो तुम्हारा साम्राज्य ! केवल अपनी पावन मातृमही को विदेशियों के शासन से मुक्त करने के लिये ही यह ब्राह्मण राजप्रपंच में पड़ा था, चन्द्र ! और यदि मेरे जीते-जी मेरी मातृभूमि पर पुन: कभी सङ्कट आया तो मैं फिर संघर्ष में कूद पड़ूंगा। अन्यथा मैं पूर्व भी यहीं रहा करता था और भविष्य में भी यहीं रहूंगा। ब्राह्मण का स्वाभाविक निवास स्थान तो सरित् के तीर गिरि शिखर ही है। कोई राज समस्या हो तो बोलो—मैं उसका समाधान करदूं, अन्यथा जाओ वत्स, अपना कार्य करो।

'क्या आप अपनी कोई सेवा बतायेंगे प्रभो ?'

राष्ट्र का रक्षण और प्रजा की सेवा करो, यही मेरी सेवा है, सम्राट्। इस शरीर को किसी की सेवाओं की कोई आवश्यकता नहीं है इतना कहकर चाणक्य द्रुतगति से यज्ञार्थ समिधायें चयन करने के लिए चले गये।

CamScanner से स्कैन किया गया

अपनी राजधानी को जाते हुए सम्राट् साथियों से बोले—आज मेरी समझ में आया है कि ब्राह्मण किसे कहते हैं और ब्राह्मण को सर्व पूज्य क्यों माना जाता है। × × ×

ऋषि दयानन्द की योग साधना चरम उत्कर्ष पर है। उन्हें १८-१८ घण्टे तक समाधि में निमग्न रहने का अभ्यास हो चुका है। प्रातः का झुटपुटा है। गङ्गातीर पर समाधि में निमग्न ऋषिराज ने नेत्र खोले ही हैं कि उनकी दृष्टि गङ्गा की लहरों में प्रवेश कर रही एक देवी पर पड़ती है। यह माँ है, अपने नन्हे से शिशु की लाश को उसने एक चीर से ढाँप रखा है। यह माता अपने हृदय-खण्ड उस मृत बालक को तो गङ्गा की लहरों में बहा देती है, किन्तु कफन के रूप में जिस चीर को ढाँपकर वह आई थी, उसे वह न बहा सकी। बहाती भी कैसे ? उसी चीर से उसे अपनी लाज जो ढाँपनी थी। इस करुण दृश्य को देखकर आचार्य दयानन्द की आँखें गङ्गा-यमुना बन गईं। वे रो रहे थे।

मित्रो और माताओ ! यह वही तो बालक है जिसने चौदह वर्ष की आयु में अपनी सगी बहिन को मृत्यु-मुख में जाते देखा था तब उसकी आँखों में एक भी आँसू न था, सभी परिजन कहते थे—यह कैसा पत्थर हृदय है ! यह वही तो नवयुवक है जिसने २२ वर्ष की भर जवानी में पिता के वात्सल्य को ठुकराया था, माँ की गोद को सूना किया था—चल पड़ा था अनन्त की अनजानी राहों में। तब भी इसकी आँखों में एक भी आँसू न था। फिर आज यह करुण क्रन्दन जिसे लक्ष्य कर कविवर रङ्ग जी ने लिखा था—

रे सदियों के बाद हिमालय आँसू भर कर रोया।

क्या रहस्य इस रोदन का है ? यही कि ऋषि ने जन-जन की पीर को अपनी पीर बना लिया, जन-जन के आँसू को अपना आँसू बना लिया। और वह चिन्तन में डूब गया—आखिर मेरा यह महान् राष्ट्र जो कभी विश्व का गुरु था और था चक्रवर्ती सम्राट्

CamScanner से स्कैन किया गया

उसकी यह दीन-हीन,गलित-पलित दशा क्यों ? जिस भारत को कभी सोने की चिड़िया कहा जाता था, मेरा वह गौरवशाली राष्ट्र जो पारस बटिया था जिससे विदेशी रूपी लोहा छूकर सोना बन जाता था, आज उसकी माँओं को लाज ढकने तक को वस्त्र नहीं ? हा,हन्त आखिर यह पतन और पराभव क्यों ? विश्व का चक्रवर्ती शासक आज विदेशियों द्वारा पदाक्रान्त और पराधीन क्यों ? और इन सभी प्रश्नों का उसे एक उत्तर सूझ पड़ा, वेद विद्या के लोप जन्य-अज्ञान मेरे महान् राष्ट्र के पतन के एक-एक दृश्य उस देवता की आँखों में झूल गये। उसके अन्तश्चक्षुओं ने देखा किस प्रकार धर्मराज कहलाने वाले युधिष्ठिर पवित्र वेदों की शिक्षा–'**अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित्कृषस्व**' अर्थात् जुआ मत खेल, खेती कर–को भुलाकर राष्ट्र के सर्वनाश का द्वार खाला ? किस प्रकार वेदोक्त क्षात्र-धर्म को भुलाकर'**दण्डः शास्तिः प्रजा सर्वा दण्डः धर्म विदुर्बुधः**' के शास्त्री वचन को भुलाकर इतिहास में महान् कहे जाने वाले अशोक ने पापियों के लिए काल रूप अपनी तलवार को सुलाकर शक-हूण और यवनों के लिए भारत विजय का मार्ग प्रशस्त किया ? किस प्रकार धर्म के नाम पर मूढ़ता और अन्ध विश्वास का शिकार बन सिन्ध के राजा दाहिर ने मुहम्मद बिन कासिम के मुकाबिले में जीती बाजीको हार दिया ? किस प्रकार मूर्ति पूजा के पाप के फलस्वरूप मन्दिरों में एकत्रित राष्ट्र की समस्त पूँजी को हमने लुटवा दिया ? किस प्रकार मूर्ति में विश्वास कर भारतीय राजा हाथ धरे बैठे रहे और महमूद गजनवी यह कहते हुए कि मैं मूर्ति को बेचने नहीं तोड़ने आया हूं। सोमनाथ मन्दिर की मूर्ति के टुकड़े-टुकड़े कर असंख्य रत्न, हीरे-जवाहरात, मोती-मूंगे ऊँटों पर लाद २ कर गजनी ले गया ? किस प्रकार पृथ्वीराज वेदोक्त क्षात्र धर्म की उपेक्षा कर मुहम्मद गौरी को सोलह बार क्षमा करता रहा और अन्त में अपना और राष्ट्र का सर्वनाश करा बैठा ? किस प्रकार वर्ण व्यवस्था को जन्मगत जाति-पांति में बदल कर पानीपत

CamScanner से स्कैन किया गया

के युद्धों में हमारी हार हुई ? किस प्रकार वैदिक राजनीति को भुला कर हमने व्य पारी के रूप में आये अंग्रेज को आश्रय दिया और अन्त में अपने महान् राष्ट्र की स्वतन्त्रता को गँवा बैठे ? किस प्रकार मातृ शक्ति के निरादर, छूत-छात की पापपूर्ण मान्यता और चूल्हे चौके के अन्ध विश्वास में फँसकर राष्ट्र की स्वतन्त्रता को चाका लगा बैठे ? किस प्रकार 'मुझे क्या और तुझे क्या है ?' कि सङ्कीर्णता और अयज्ञीय वृत्ति को अपना कर हमने अपनों को बेगाना बना दिया ? किस प्रकार 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' विश्व के आर्यकरण के अपने लक्ष्य और ऐतिहासिक गौरव को भलाकर हम अपनों को ही धक्के-दे-देकर अनार्य एवं म्लेच्छ बनाते रह ?

किस प्रकार एक ईश्वर और उसके मुख्य नाम ओम् को जगह अनेक ईश्वरों की कल्पना, सर्व व्यापी प्रभु को सातवें आसमान, चौथे आसमान, क्षीर सागर में शयन करने वाला या एक देशीय माना, सर्वान्तर्यामी-अजन्मा प्रभु को मां के गर्भ से जन्म लेने वाला मानना, एक वैदिक धर्म--मानव धर्म की अगह अनेक मत-मतान्तरों का कल्पन , एक धर्म ग्रन्थ को जगह अनेकों पन्थाई ग्रन्थ, एक अभि-वादन– नमस्ते के स्थान पर अनेकों विचित्र २ अभिवादन और इन सबसे उत्पन्न मानव-मानव के बीच भेद-भाव की दीवालें ये सम्पूर्ण चित्र ऋषिराज के नेत्रों में तैर गये। उनका अन्तर कराह उठा। इस सम्पूर्ण दुरवस्था का मूल राष्ट्र के प्रथम और प्रबलतम शत्रु अज्ञान को पाकर ऋषिराज ने समाधि के आनन्द को 'हवि' बनाते हुए मानो कहा—'इदं राष्ट्राय स्वाहा, इदं न मम' और सचमुच वह महर्षि १८ घण्टे के समाधि सुख को त्याग कर पाखण्ड--खण्डिनी पताका लेकर कर्तव्य क्षेत्र में कूद पड़ा ।

कहा था—उस योगिराज ने एकबार जिससे उन्होंने योग शिक्षा ली थी—दयानन्द तुम किस प्रजा-प्रेम के बखेड़े में पड़ गये हो लगता है तुम्हें अपनी मुक्ति के लिए एक और जन्म धारण करना

CamScanner से स्कैन किया गया

पड़ेगा। याद है आपको, देव दयानन्द ने क्या उत्तर दिया था, इसका उन्होंने कहा था—महाराज, क्षमा करें। अब मुझे अपनी वैयक्तिक मुक्ति की खोज नहीं है। मेरे महान् राष्ट्र के करोड़ों मानवों को और मत-मतान्तरों की पगडन्डियों में उलझ रही अखिल विश्व की सम्पूर्ण मानव प्रजा को मुक्ति पथ पर-परम पवित्र वेद के राजपथ पर लाते मैं तो स्वयं ही मुक्त हो जाऊँगा। मुझे अपनी वैयक्तिक मुक्ति के लिए अब किसी पृथक अनुष्ठान की आवश्यकता नहीं।'

धन्य हो, ऋषिराज ! यही तो है **'मह्यं दत्वा व्रजत ब्रह्म लोकम्'** की जीवन्त व्याख्या। यही तो है व्यक्तित्व का विराट् रूप ! यही है—मन्त्र के उपदेशानुसार वृहत सत्य और महान् ऋत् का संदर्शन। यही है मित्रो ! संकल्प की उग्रता, राष्ट्र-धर्म की दीक्षा, तपोमय जीवन का वरण और यज्ञ भावना की राष्ट्रिय जीवन में प्रतिष्ठापना।

राष्ट्र के गौरव की रक्षा के लिये, राष्ट्र को स्वतन्त्रता और सम्मान के लिए अपने और अपने परिवार के हितों को बलिदान करने वाले नर पुङ्गव ही अमर हैं। सरहिन्द को दीवाल में चिने हुए गुरु गोविन्द सिंह के लाड़ले—जोरावरसिंह और फतहसिंह तथा बारह वर्षीय वीर बालक हकीकतराय का आत्म-बलिदान आज भी **'इदं राष्ट्राय स्वाहा, इदं न मम'** का सन्देश दे रहा है।

अपने सतीत्व और राष्ट्रिय सम्मान की रक्षार्थ चौदह हजार देवियों का जीवित चिता दहन—कैसा अनूठा राष्ट्र धर्म है ? उदयपुर के शिशु महाराणा की रक्षा के लिये अपने इकलौते पुत्र को अपनी ही आँखों के समाने चेहरे पर किञ्चित् भी विभ्रम की रेखा लाये बिना आहुत करने वाली पन्नाधाय और महाराणा प्रताप एवं शक्तिसिंह के बीच तलवारें खिच जाने पर राज्य कुल की रक्षार्थ अपने जीवन को ढेर कर देने वाले पुरोहित प्रवर तुम दोनों इतिहास के पृष्ठों में अमर हो। युग-युग तक तुम्हारी यशोगाथा भावी पीढ़ियों को राष्ट्र धर्म का पुनीत सन्देश देती रहेंगी। सच में मरकर जीने की कला उन्होंने सीखी थी।

CamScanner से स्कैन किया गया

वीर शिरोमणि युवक लक्ष्मण ने भगवत्प्रेम से प्रेरित हो एकान्त साधना के विचार से वन की राह ली। गुरु गोविन्द सिंह को इनकी बैराग्य वृत्ति का ज्ञान हुआ तो तुरन्त इन्हें खोजते हुए नर्वदा के तट पर जहाँ यह युवक भस्म रमाये तपस्या-लीन था, पहुंचे। और बड़े ही करुणा भरे स्वर में बोले—'मेरे प्यारे लक्ष्मण वीर, क्या तुम नहीं जानते, प्यारी-२ मातृ-भूमि, पितृ-भूमि, पुण्य-भूमि भारत माता आज म्लेच्छों द्वारा पदाक्रान्त हो रही है, गोमाता के गले पर छुरी चल रही है आर्य (हिन्दू) जाति विनाश के कगार पर खड़ी है, इधर तुम हो कि अपने स्व-धर्म-क्षात्र-धर्म को त्याग कर यहाँ भस्म रमाये बैठे हो। मेरे प्यारे ! प्रभु प्यारे से प्राप्ति करने की यह रीति नहीं है। याद रखो, भगवान् का हजारों बार नाम पुकारने से भगवान् प्रसन्न नहीं होते, भगवान् का प्यार पाने का साधन है—भगवान् की आज्ञा का पालन करना। प्रभु की आज्ञा है—गो-घातक, अन्यायी को शीशे की गोलो से मार दो। यह भी मत भूलो कि योगी योग-साधना द्वारा जिस परम गति को पाता है एक आदर्श ब्राह्मण प्रभु समर्पित कर्तव्य भावना से वेद प्रचार द्वारा अज्ञान नाश करके उसी दिव्य स्थिति को प्राप्त करता है। इतना ही नहीं एक आदर्श क्षत्रिय कर्तव्य बुद्धि से राष्ट्र रक्षार्थ जब आततायी का शिरच्छेदन करता है तो वह भी समान रूप से प्रियतम प्रभु की गोद पाने का पूर्ण अधिकारी है। तुम गुण, कर्म, स्वभाव से क्षत्रिय हो। क्षात्र धर्म तुम्हारा 'स्वधर्म' है। अतः आओ, मेरे साथ—मिटती हुई आर्य जाति को बचाने के लिए। जाति के रक्षण, राष्ट्र के रक्षण के लिए अपने सर्वस्व की आहुति ही सच्ची प्रभु पूजा है।

यही वीर लक्ष्मण बन्दा वैरागी के नाम से इतिहास के पृष्ठों में अमर हो गये हैं। जीवन भर वे स्वदेश और स्वजाति के लिए जूझते रहे। अत्याचारी मुस्लिम शासकों के छक्के छुड़ा दिये, इस महावीर ने। पर अन्त में साधन-शून्य होने पर ये पकड़े गये। इनके

CamScanner से स्कैन किया गया

इकलौते पुत्र का शिर भाले से छेदकर इनकी छाती पर दे मारा गया जलते हुए, संडासों से इस स्थित प्रज्ञ का मांस नोंचा जा रहा था। निकलते हुए रक्त के फव्वारे से अंजलि भरकर ये बार-बार रक्त को अपने मुख से लपेटते हैं किसी ने पूछा—बन्दा यह तुम क्या कर रहे हो ? वीर बन्दा का उत्तर था—'शरीर से रक्त निकलने के कारण चेहरे पर लाली का न रहना स्वाभाविक है, मैं यह लाल-लाल रक्त इसलिये लपेट रहा हूं ताकि मातृ-भूमि के लिये बलिदान देते समय मेरे चेहरे पर लाली बनो रहे, फीकापन न दिखाई पड़े।' धन्य हो राष्ट्र वीर मृत्युञ्जयी बन्दा !

राष्ट्र धर्म में दीक्षित प्रणवीर प्रताप की उग्रता—थेजस्विता, उनका तप और यज्ञ भावना भी कितनी स्पृहणीय है ! हल्दीघाटी की लाल भूमि युगों-युगों तक इस महावीर के शौर्य की गाथा गाती रहेगी। आपको याद होगा किस प्रकार प्रताप का दूत अकबर के दरबार में प्रताप की पगड़ी उतार कर ही प्रणाम करता है।

खाऊँ न परतन्त्रता को स्वर्ण को मैं थालियों में।
भले हैं स्वतन्त्रता के दोना ढाक-पात के॥

— महाराणा प्रताप का यह उग्र प्रण बलिपथ के राहियों का सदैव आदर्श बना रहेगा।

एक आदर्श वैश्य किस प्रकार राष्ट्र यज्ञ में हविर्दान कर सकता है ? महाराणा प्रताप आज मेवाड़ की भूमि को त्यागने के लिए विवश हो गये हैं। वे ज्यों ही घोड़े को एँड़ देकर आगे बढ़ाना ही चाहते हैं कि एक वृद्ध पुरुष उनके घोड़े की लगाम थाम लेता है, कहता है—'महाराणा ! आप पर घोर कष्ट आये वन-२ मारे-२ फिरे। आप ही नहीं महारानी ने भी, घास की रोटियों पर गुजारा किया, इसे भी अवसर आये, जब घास की रोटियों को भी वन बिलाव ले गया। प्यारे बच्चों को भूख से बिलबिलाते आपने देखा, पर तब भी आपने प्यारे मेवाड़ को नहीं त्यागा, आज आप उसे क्यों छोड़ने लगे?

CamScanner से स्कैन किया गया

मानो, अन्तर का क्षोभ आँखों के रास्ते से चू पड़ा। धीर-वीर महाराणा अब बच्चों की भाँति रो रहे थे। रुँधे कण्ठ से वे बोले—'भामाशाह, मंत्रि प्रवर ! आप तो जानते ही हैं कि मेवाड़ की चप्पा २ भूमि मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय है। फिर आज जो मैं उसे त्यागने लगा हूं, उसका एक ही कारण है—मेरे पास अकबर की सेना से युद्ध करने को कोई साधन शेष नहीं रह गये।' यह कोई गल्प नहीं हैं, इतिहासकार बताते हैं कि भामाशाह ने उस समय अपने सम्पूर्ण जीवन की अर्जित सम्पूर्ण सम्पदा को महाराणा के चरणों में भेंट करते हुए मानो यज्ञ की भाषा में कहा— इदं राष्ट्रायं स्वाहा, इदं न मम' यह धन मेरा नहीं, मेरे राष्ट्र का है। अहा वैदिक त्यागवाद का, यज्ञ भावना का, त्यक्तेन भुञ्जीथा: की वैदिक शिक्षा को जीवन में उतारने का कैसा ज्वलन्त आदर्श है !

भामाशाह का भौतिक शरीर आज कहाँ है ? 'भस्मान्तँ शरीरम् वह तो भस्म होगया। पर इस 'राष्ट्र यज्ञ' द्वारा राष्ट्र-धर्म की पालना द्वारा उसने मृत्यु को जीतकर अमर जीवन पा लिया। भारत ही नहीं विश्व के इतिहास में वह 'दानवीर' भामाशाह के नाम से अमर हो गया। यही तो है जीवन जीने की कला !

वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिता:' वेद माँ के इस सन्देश को क्रियान्वित करने वाले पुरोहित प्रवर वशिष्ठ और विश्वामित्र ने जहाँ राष्ट्र रक्षार्थ राम लक्ष्मण को और महर्षि अगस्य ने महावीर हनुमान् को तैयार किया, जहाँ गुरुवर्य सन्दीपनि ने योगेश्वर कृष्ण को राष्ट्र धर्म का दोक्षा दी, वहा समर्थ गुरु रामदास ने शूर शिरोमणि छत्रपति शिवा का और वर्त्तमान में वेदप्रचार द्वारा अज्ञान-नाश के व्रतके रुप में ही 'गुरु दक्षिणी' ग्रहणकर आचार्य प्रवर गुरुवर्य विरजानन्द दण्डी जी ने युग निर्माता ऋषि दयानन्द को दीक्षित कर अपने आचार्यत्व को धन्य कर दिया ।

भगवान् राम योगेश्वर कृष्ण महर्षि दयानन्द आदि के जीवन में तो मन्त्र में वर्णित सातों विशेषतायें थीं ही छत्रपति शिवाजी के

CamScanner से स्कैन किया गया

ऋताचरण का भी एक अनूठा उदाहरण तब मिलता है—जब उनके एक सैनिक अफसर लूट में परम रूपवती गौहरबानू शहजादी को भी एक तोहफे के रूप में वीर शिवा के समक्ष प्रस्तुत करते हैं और महावीर शिवाजी उसमें अपनी माता जीजाबाई का दर्शन करते हुए कहते हैं—

होती जो इतनी सुन्दर मम जीजाबाई माता।
तो रूप-रङ्ग सुन्दर इतना ही मैं भी पाता॥

अपने 'स्व' को राष्ट्र की आत्मा के साथ जोड़ देने की दीक्षा लेने वाले राष्ट्र वीरों को कितना सत्यशील, कितना ऋताचारी, कितना संयमी कितना तेजस्वी और कितना तपस्वी होना चाहिये—वेद माँ की इस सत्प्रेरणा को हम राष्ट्र पिता महात्मा गांधी, अमर सेनानी नेताजी सुभाष, अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द, पं० लेखराम ला. लाजपतराय, भाई परमानन्द, महावीर सावरकर, शहीदे आजम सरदार भगतसिंह, सुखदेव, अशफाक, महान् क्रांतिकारी चन्द्रशेखर आजाद व वीरशिरोमणि रामप्रसाद बिस्मिल के साथ ही महारानी लक्ष्मोबाई, वीरमाता दुर्गावती, वीर तान्त्या टोपे एवं मंगल पांडे आदि शतंसहस्र बलिदानी वीरों के पावन चरित्रों में चरितार्थ हुआ पाते हैं। सच में वे वृहत् सत्य से, अमर जीवन के रहस्य से परिचित थे तभी तो फाँसी के तख्ते पर जाते हुए बिस्मिल का बजन बढ़ गया था, वे यज्ञ करना तथा 'ओ३म् विश्वानि देव' मन्त्र का उच्चारण नहीं भूले थे और वीर भगतसिंह मस्ती के साथ गा रहे थे—

सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है।
देखना है जोर कितना बाजुये कातिल में है॥

कैसी अपूर्व मस्ती थी, कैसी उग्रता थी उनके संकल्प में जिससे वे हँसते-हँसते मौत का स्वागत कर सके और उनके कण्ठों से ये स्वर फूट सके—

शहीदों की चिताओं पर जुड़ेंगे हर बरस मेले।
वतन पर मरने वालों का यही बाकी निशां होगा॥

CamScanner से स्कैन किया गया

ठीक ही लिखा है कवि ने--

जिसने मरना सीख लिया है जीने का अधिकार उसी को।

अथवा

मृत्यु को जो जन्म समझे मैं उसे जीवन कहूंगा।
जो पुरातन को नया करदे उसे नूतन कहूँगा॥

-मित्रो और माताओ ! जब हम राष्ट्र धर्म या राष्ट्र प्रेम की बात करते हैं तो उसका अर्थ केवल राष्ट्र को धरती से प्रेम करना ही नहीं होता। वेद माता बताती है—'तिस्रो देवी मयो भुवः इडा सरस्वती मही' अर्थात् इडा=संस्कृति, सरस्वती=ज्ञान सम्पदा या भाषा और मही=भूमि, ये तीन देवियाँ किसी भी राष्ट्र को सुख-सम्पन्न बनाती हैं।

विदेशी और विधर्मियों से भूमि को स्वतन्त्र करा लेना ही पूर्ण स्वतन्त्रता नहीं है। स्व-भाषा, स्व-संस्कृति एवं स्व-सभ्यता की स्वतन्त्रता भी उतनी ही आवश्यक है। मित्रो और माताओ ! सदियों के बाद हमने शत-सहस्र वीरों के अमर बलिदान, और तप-त्याग तथा ईश कृपा से भौतिक स्वतन्त्रता तो प्राप्त कर ली है। हमारी भूमि तो विदेशियों के चुङ्गल से मुक्त हो गई, पर बौद्धिक दासता ने हमें और भी अधिक जकड़ लिया है। हमारी महान् संस्कृति और मातृ-भाषा पर आज भी अंग्रेजी एवं अंग्रेजियत हावी हैं। हमारी संस्कृति की मानबिन्दु गोमाता का वध आज भी चल रहा है। हमारे घरों में मम्मी-डैडी, पप्पू-पापा, तथा चिण्टू-मिण्टू-पिण्टू के दुर्भाग्य पूर्ण प्रयोग हमारी बौद्धिक दासता का डिण्डमघोष कर रहे हैं। बच्चों के जन्म दिन को केक काटकर मनाया जाता है, उन्हें ईसाइयों के कान्वेण्ट स्कूलों में शिक्षा दिलाना बड़प्पन का चिन्ह माना जाता है। अनेक परिवारों में विवाह आदि के निमन्त्रण पत्र और दुकानों के नाम पट अंग्रेजी में होते हैं। नौकरियों में भी अंग्रेजी पढ़े लिखों को अधिक महत्व दिया जाता है। हमारा आचार-व्यवहार, खान-पान, रहन-सहन, वेश-भूषा सब कुछ अंग्रेजियत से आक्रान्त है।

CamScanner से स्कैन किया गया

मित्रो और माताओ ! एक बार किसी नें गाँधी जी से पूछा—कि आप में और नेहरू जी में कितना फर्क है। गाँधी जी मुस्कराये और कहा कि बहुत थोड़ा—मैं चाहता हूं कि अंग्रेज भले ही यहाँ रहा आवे (आखिर वह भी इन्सान है) पर अंग्रेजियत—विदेशी सभ्यता यहाँ नहीं रहे, जब कि नेहरू चाहते हैं कि अंग्रेज तो भारत को भूमि से चला जावे, पर अंग्रेजियत बनी रहे।' कितने थोड़े शब्दों में कितना बड़ा अन्तर है, यह दुर्भाग्य से हमारी बागडोर नेहरू जी और नेहरू पन्थियों क हाथ में रहो, उसी का दुष्फल आज की हमारी यह बौद्धिक दासता है। कवि ने ठीक ही लिखा है—

जिसको न निज भाषा तथा निज देश पर अभिमान है।
वह नर नहीं, नर-पशु निरा है और मृतक समान है॥

सज्जनो, आये हम मृत अवस्था को त्यागें, जागें और युग के आह्वान को सुनें। हमें अपनी भाषा, अपने देश अपनी संस्कृति और सभ्यता पर अभिमान हो। तो आओ, हम आज को कथा को विराम देने से पूर्व अपने महान् राष्ट्र को फिर विश्व गुरु बना सकने, अपने अमर शहीदों के स्वप्नों, उनके अरमानों को पूरा कर सकने और वैदिक संस्कृति को विश्व सस्कृति के रूप में प्रतिष्ठित कर सकने के लिए अपनी आत्मीयता को विस्तृत करें। कहें कि हमारा जीवन केवल हमारे और हमारे परिवार के लिए नहीं, हमारे राष्ट्र के लिए है हमारे राष्ट्र को भूमि, जल-वायु, से बना हमारा जीवन हमारे राष्ट्र का जीवन है। उसकी भूमि उसकी संस्कृति-सभ्यता, उसकी भाषा और ज्ञान-सम्पदा की रक्षा करना, और रक्षार्थ अपना तन-मन धन सर्वस्व होम देना, हमारा पुनीत कर्तव्य है। यह महान् यज्ञ है, श्रेष्ठतम प्रभु पूजा है। इस वृहद् सत्य, शाश्वत सत्य की रक्षार्थ हम ऋताचारी बने, तपस्वी और तेजस्वी बनें, दृढ़ संकल्प की दीक्षा लें, और यज्ञ भावना को त्याग भावना, को अन्तर में जगायें। मेरे पड़ौसी

CamScanner से स्कैन किया गया

छठा दिन--

जीवन कला [५] विश्व धर्म

विश्व-प्रेम का पुण्य प्रवाह

ओं मवा अग्ने दुरना उपेतौ सखेव सख्ये पितुरेव साधुः ।
पुरुद्रुहो हि क्षितयो जनानाम् प्रति प्रतीची दहताद् अरातिः ॥

सामूहिक गीतिका

प्रभो, वेद-वीणा बजे विश्व भर में ।
सुनें मन्त्र झंकार प्रत्येक घर में ॥
सभी राष्ट्र होवें स्वराज्याधिकारी ॥
बली निर्बलों को न जकड़ें स्वकर में ॥
उगे व्योम में ज्ञान का दिव्य भानू ।
खिलें पुण्य पंकज विमल मानसर में ॥
पताका उड़े ओम् की व्योम् में फिर ।
बहे विश्व स्वाधीनता की लहर में ॥
अमर शान्ति का गान गूँजे गगन में ।
सुधा-सी बरसने लगे सप्त स्वर में ॥
यही कामना थी दयानन्द ऋषि की ।
यही गूँज थी उनके प्रत्येक स्वर में ॥

की पीर मेरी पीर बने, उसके आँसू मेरे आँसू बनें और उसकी खुशी मेरी खुशी बने। यज्ञोपवीत के सूत्रों का शाश्वत सन्देश मूर्त हो उठे—न कहीं अज्ञान की अंधियारी रहे, न अन्याय की कालिमा और न अभाव का ताण्डव। हमारे पास जो भी ज्ञान-बल, शौर्य-बल और धन बल है, वह सबका है, और सबके लिए है। यदि ऐसा हम कर सके तो वह समय दूर नहीं है, जब—

कहेगा जगत् फिर से एक स्वर में सारा ।
वही पूज्य भारत गुरु है हमारा ॥

CamScanner से स्कैन किया गया

मित्रो और माताओ ! वेद माता है, विश्व के सभी मानवों की मां है। वेद को शिक्षा 'शृण्वन्तु सर्वे अमृतस्य पुत्राः' भगवान् के अमृत पुत्र सभी मानवों के लिये है। अतः वेद का धर्म विश्व धर्म है, बेद की शिक्षायें सार्वभौमिक है। जिस प्रकार वेदोक्त व्यक्ति-धर्म पारिवारिक धर्म का सहायक है और जिस प्रकार वेदोक्त पारिवारिक धर्म सामाजिक समुन्नति व राष्ट्रधर्म के सुविकास का पोषक है, उसी प्रकार वेद का राष्ट्रवाद अथवा वेद का राष्ट्र धर्म भी विश्व धर्म का पूरक है। उनमें कहीं अन्तर विरोध नहीं है। वैदिक भक्तिवाद यज्ञ-भावना का विकास करता हुआ सम्पूर्ण विश्व के मानव मात्र और प्राणिमात्र से प्रेम का पाठ पढ़ाता है। बलिवैश्व यज्ञ में इसा विश्व-प्रेम की भावना का समावेश है।

सज्जनो ! आज हम जिस पवित्र वेद-मन्त्र पर चिन्तन करने लगे हैं, उसमें भक्त प्रभु चरणों में उपस्थित हो विनय करता है—ह अग्ने, प्रकाश स्वरूप प्रियतम प्रभो ! मैं (उपे तौ) आपके समीप आया हूं, मैंने अनुभव कर लिया है कि—

यदंग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि ।
तवेत्तत् सत्यमंगिरः ।।

हे प्रभो ! हे परम सुन्दर देव ! समर्पक का सुनिश्चित कल्याण एक मात्र आपके सुनहले हाथों द्वारा ही सम्भव है। अतः प्रभो ! सब ओर से निराश हुआ मैं आपकी चरण-शरण में उपस्थित हुआ हूं। नाथ ! अब कोई लौकिक आकाँक्षा शेष नहीं रह गई, एक ही कामना है, प्रभो ! (सखेव सख्ये) जिस तरह एक मित्र अपने मित्र के साथ अभिन्न और एकरस होता है। (।पतुरेव साधुः) जैसे पिता अपने पुत्र पर वात्सल्य को वर्षा करता है, वैसे ही प्रभो ! (सुमना, भव) आप अपने इस अकिञ्चन भक्त पर सुमनस्क हूजिये, अपने स्नेह का वर्षण कोजिये, मेरे साथ एक रस होइये।

अहा ! कैसी कमनीय कामना है, भक्त की ! सच्चा मित्र क्या करता है, अपने मित्र के प्रति ?

CamScanner से स्कैन किया गया

कुपथ निवारि, सुपन्थ चलावा।

नाथ ! आप मुझे सच्चे मित्र की भाँति वेद के विरुद्ध पतनकारी मार्ग से हटाकर शान्ति और आनन्द के मूल स्रोत परम पवित्र वैदिक मार्ग पर चलने की प्रेरणा कीजिये। प्रभो ! पिता की भाँति आप हमें अँगुली पकड़ कर कल्याण-पथ का बोध कराइये, उस पर चलाइये, और सब ओर से हमारा परिरक्षण कीजिये !

माताओ ! आप माँ हैं, आप जानती हैं कि बालक जब आपका पल्ला पकड़ कर सच्चे हृदय से जापकी गोद के लिये मचल जाता है, आप उसे उठाकर हृदय से लगा लेती हैं, और उसे अपना प्यार देकर निहाल कर देती हैं। पर निश्चय ही मां को वे बालक प्रिय नहीं जो भाई २ या भाई-बहिन होकर भी परस्पर द्रोह करते हैं, द्वेष करते हैं, जिनके हृदय एक दूसरे के प्रति संकीर्णता, अनुदारता की आग से जल रहे हैं। हमारी उस विश्वधात्री माँ ने भी भक्त की आत्म-पुकार सुनली है और उसे अपने वात्सल्य से सराबोर करती हुई कहती है– मेरे वत्स ! मैं तुझसे दूर कहाँ हूं। मेरे पुत्र ! जिस दूरी का अनुभव तुझे हो रहा है, वह काल और स्थान की दूरी तो है नहीं, मैं तो हर जगह और हर समय तेरे साथ ही हूं। यह दूरी तो मात्र अज्ञान की दूरी है। मेरी विश्व प्रजा के साथ तू एक रस होजा, एक मन हो जा, मैं को 'हम' में बदल दे। 'अहम्' को विस्तृत करते-करते परिवार, समाज और राष्ट्र में व्यापता हुआ विश्व के मानव मात्र नहीं २ प्राणि मात्र तक व्याप कर 'वयं' में बदल दे। बस यही मेरे मिलन को, मेरे साथ एक रस होने की राह है–**'मुझको पाने का तरीका, अपने खो जाने में है।'**

विश्व प्रेम की इस पावन धारा में नहाकर मेरे प्रिय पुत्र (पुरु-द्रुहो जनानाम्) मानव-मानव के बीच पारस्परिक द्रोह या द्वेष बुद्धि को (हि क्षितयो) निश्चित रूप से पूर्ण रूप से क्षीण कर दे, मिटादे। (प्रति प्रतीची) एक-दूसरे के प्रति (दहतात् अरातिः) अदान भाव को, संकीर्णता को जला दे, भस्म करदे।

CamScanner से स्कैन किया गया

दुई का परदा पकड़कर, करदे गाफिल तार-तार।
और अपने गले में ले, आँसुओं का डाल हार॥

प्रेमाश्रुओं में नहाकर जहाँ तेरा अन्तर निर्मल हुआ नहीं किन शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा' जिसका वाणी से वर्णन करना शक्य नहीं है, जिसका अनुभव ही किया जा सकता है ऐसी अभिनव शान्ति की प्राप्ति तुझे हो सकेगी।

जीवन के चरम लक्ष्य शान्ति प्राप्ति का--प्रभु का प्यार पाने का कैसा सहज साधन वेद माता ने बता दिया। प्रभु का प्यार पाना है तो प्रभु की प्रजा का प्यार करो। माँ का स्नेह पाना है तो माँ के बच्चों को प्यार करो। बचपन में अंग्रेजी की पुस्तक में एक कहानी पढ़ी थी। अबू बेन आदम अपने कमरे में सोया था। अनायास स्वप्न में एक देवदूत प्रकट हुआ। उसके हाथ में एक सूची थी। अबू बेन ने पूछा, आपके हाथ में यह कैसी सूची है? देवदूत ने उत्तर दिया—यह उन की सूची है जो भगवान् को प्यार करते हैं, उसकी पूजा-अर्चना-करते हैं। बड़ी उत्सुकता से अबू बेन ने पूछा कि क्या सूची में उसका नाम भी है। उसे निराश होना पड़ा, उस सूची में उसका नाम नहीं था। अगले दिन अबू बेन अदम को फिर स्वप्न में वही देवदूत दीख पड़ा। आज भी उसके हाथ में एक सूची थी। 'आज तुम्हारे पास यह कैसी सूची है?' इस प्रश्न के उत्तर में देवदूत ने कहा—'आज उनकी सूची है, जिन्हें ईश्वर प्यार करता है।' अबू बेन अदम के आश्चर्य का ठिकाना नहीं था, आज की सूची में उसका नाम शीर्ष स्थान पर था। कैसे आश्चर्य की बात थी, कैसी विचित्र पहेली थी—जो ईश्वर को प्यार करते हैं, ईश्वर की आराधना-उपासना करते हैं, उस सूची में अबू बेन का नाम नहीं है, पर ईश्वर जिन्हें प्यार करता है उस सूची में सिरे पर उनका नाम लिखा है! समाधान देते हुए देव-दूत ने कहा—यह ठीक है कि तुम पूजा-नमाज के नाम पर कुछ नहीं करते पर तुम्हारा, एक-एक क्षण, तुम्हारा एक-एक श्वास-प्रश्वास भगवान् की प्रजा की सेवा में लगता है। जो प्रभु की प्रजा को प्यार

CamScanner से स्कैन किया गया

देता है, वही प्रभु का प्यार पाता है। यही तो जीवन जीने की कला है। सच्चा प्रभु-भक्त सृष्टि के कण-कण में अपने प्रियतम प्रभु की झाँकी देखता है—

लाली मेरे लाल की जित देखूँ तित लाल।
लाली देखन में गई, मैं भी हो गई लाल॥

सारा विश्व ही प्रभुमय है। प्राण मात्र के साथ एकत्व की यह अनुभूति जब होती है तो–'तत्र को मोहः कः शोकः एकत्व मनु पश्यति' उसका सम्पूर्ण शोक और मोह नष्ट होकर मानस अनूठी मस्ती से भर जाता है, उसका जीवन—"मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे, मित्रस्त्र चक्षुषा समीक्षामहे" प्राणिमात्र के प्रति मैत्री भावना से युक्त हो जाता है। एकत्व भावना की यह अनुभूति होने पर परस्पर द्रोह कहाँ, द्वेष कहाँ ? वैदिक भक्त की वाणी में वह कह उठता है—

योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः।

प्रभो ! तेरी प्यारी प्रजा को, परिवार-समाज, राष्ट्र और विश्व को दुखी बनाने के मूल कारण द्वेष बुद्धि संकीर्णता, अदानभाव द्वैत-बुद्धि को अब मैंने तेरे न्याय पर छोड़कर उसे सर्वथा ही समाप्त कर दिया है। प्रभु-प्रेम के रहस्य को समझने वाले वैदिक भक्त की अब एक ही कामना है—

न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं ना पुनर्भवम्।
कामये दुःख तप्तानाम् प्राणिनामार्ति नाशनम्॥

उसे अब राज्य और स्वर्ग सुख तो क्या मोक्ष तक की चाह नहीं, अपने प्यारे प्रभु की दुखी प्रजा की सेवा ही, उनके दुःखों का निवारण ही उसके निकट जीवन की सार्थकता है। ठीक ही लिखा है राष्ट्र कवि गुप्त जी ने—

जो जन तुम्हारे पद कमल के असल मधु को जानते।
वे मुक्ति की भी कर अनिच्छा तुच्छ उसको मानते॥

CamScanner से स्कैन किया गया

मित्रो और माताओ ! अब तक के विवेचन से हमें ज्ञात हुआ कि अपने ज्ञान, बल, वैभव, राज्य, स्वर्ग सुख यहाँ तक कि मुक्ति के आनन्द को भी भगवान् की प्रजा को सुखी बनाने के लिये होम देने वाला याज्ञिक ही प्रभु का प्यार या सच्ची शान्ति पाता है। और मनुष्य-मनुष्य के अन्तर की यह शान्ति ही तो विश्व शान्ति का आधार है। तो हमें ज्ञात हुआ कि विश्व प्रेम ही विश्व शान्ति का मूल है। बिना प्रेम के त्याग कहाँ और बिना त्याग (यज्ञ-भावना) के सुख-शान्ति कहाँ ?

भगवान् हमें प्यार करते है इसीलिये उन्होंने अपने इस सुनहले संसार को हमें दे रखा है। भगवान् की सृष्टि की हर वस्तु त्याग का, यज्ञ-भावना का आदर्श प्रस्तुत करतो हुई भगवान् के असीम प्रेम का परिचय दे रही है। सागर किरणों को कितनी उदारता से जल दे रहा है, किरणें उसे बादलों को दे रही हैं, बादल पृथ्वी को दे रहे हैं, पृथ्वी नदियों को दे रही है, नदियाँ पुनः समुद्र को दे रही हैं। 'अयं यज्ञो विश्वस्य नाभिः' यह यज्ञ चक्र हो, विश्व-प्रेम का, यह यज्ञीय पुण्य प्रवाह ही विश्व जीवन का आधार है। सर्वत्र द द द की ध्वनि गूँज रही है—बादलों की गड़गड़ाहट में, कल-कल छल-छल करती सरिताओं के गान में सर्वत्र परहित के लिये आत्म बलिदान का संगीत गूँज रहा है। यज्ञपति परमात्मा के विराट् यज्ञ का, त्यागवाद के पुनीत आदर्श का संस्कृत के एक कवि ने कितना सुन्दर चित्रण किया है—

नद्यः पिबन्ति स्वयमेव नोदकं स्वयं न खादन्ति फलानि वृक्षाः।
धाराधरो वर्षति नात्म हेतवे परोपकाराय सतां विभूतयः॥

हिन्दी के एक कवि ने इसी को अपने शब्दों में प्रस्तुत किया है—

तरुवर फल नहिं खात हैं नदी न संच्चै नीर।
परोपकार के कारने सन्तन धर्‌यौ शरीर॥

यह यज्ञ भावना, यह 'इदं न मम' की वृत्ति, यह त्यागवाद ही वैदिक समाजवाद है। वैदिक समाजवाद का सन्देश है कि अपने पूर्ण

CamScanner से स्कैन किया गया

पुरुषार्थ से ज्ञान-बल एवं धन को अर्जित करो, किन्तु इन सभी उपलब्धियों का स्वामी उनके दाता परमात्मा को मानते हुए, इनका उपभोग 'त्यक्तेन' त्याग पूर्वक अथवा उसके प्रति समर्पण भाव से करो। महाराज कृष्ण के शब्दों में—

स अघं केवलं भुङ्क्ते यो पचत्यात्म कारणात्।

अर्थात् जो अपने लिये ही पकाता है, वह पाप का ही सेवन करता है। वह समाज का शत्रु है, वह समाज को दुःखमय बनाने का अपराधी है।

आज संसार में सर्वत्र जो अशान्ति है, पीड़ा है, कराह है, वेदना और चीत्कार है, उसका कारण यही 'अराति' एक दूसरे के प्रति अदान वृत्ति एवं द्वेष बुद्धि है। एक उदाहरण से हमारी बात और अधिक स्पष्ट हो सकेगी। एक वृत्त (गोल घेरे) में कुछ लोग बैठे हैं। प्रत्येक की जेब में १)रु० है। आयें, हम दो स्थितियों पर विचार करें। एक स्थिति में एक ने दूसरे पड़ौसी को मुक्का दिखाया और उसकी जेब का एक रुपया छीन लिया, पहले के पास कुछ नहीं रहा दूसरे के पास दो रुपए हो गये। पर उसे उसके पड़ौसी ने मुक्का दिखाया और उसने एक रुपया छीन लिया। पड़ौसी के पास दो रुपये हो गए, उसके पास एक रुपया रहा। यह चक्र आगे तक इसी प्रकार चलता रहा। अन्त में पहले वाले ने भी अपने दूसरी ओर के पड़ोसी से एक रुपया छीन लिया। इस चक्र के आरम्भ होने के पहले प्रत्येक की जेब में एक रुपया था। और अन्त में भी आपने देखा प्रत्येक के पास एक ही रुपया है, प्रत्येक के मुक्के तने हैं, भौंयें तनी हैं, आँखों के डोरे लाल हैं। छीना-झपटी, मारकाट का घिनौना दृश्य है। इस चक्र का नाम है अयज्ञीय या दानवी चक्र 'Survival of the fittest'' के नाम से संसार में आज यही चक्र चल रहा है। इसलिए संसार दुःखी है, संत्रस्त है।

अब दूसरी स्थिति देखिये इसमें एक सोचता है मेरी आवश्यकतायें कम हैं, मैं बिना रुपये के ही काम चला सकता हूं। मेरे

CamScanner से स्कैन किया गया

पड़ौसी की आवश्यकतायें अधिक हैं। वह अपना एक रुपया पड़ौसी की जेब में डाल देता है। उसके पास कुछ नहीं रहता, पड़ौसी के पास दो रुपये हो जाते हैं। पर वह भी उसी यज्ञीय भाषा में सोचता है। मैं दो रुपये का क्या करूँगा, मेरे पड़ौसी को विशेष सहयोग चाहिये। और वह एक रुपया अपने अगले पड़ौसी की जेब में डाल देता है। बस दूसरे से तीसरे, तीसरे से चौथे के क्रम में अन्ततः पहले के पड़ौस वाला इस पहले की जेब में (जो खाली हो चुकी थी) एक रुपया डाल देता है। हम देखते हैं कि यहाँ भी आरम्भ में प्रत्येक के पास एक रुपया था और अन्त में भी एक ही है। पर इस स्थिति में प्रत्येक का चेहरा एक दैवी मुस्कान से खिला है, भाव-भंगिमा में अनुपम माधुर्य है, वाणी से अमृत झर रहा है, हृदय में माधुर्य और परहित चिंतन का सागर ठाठें मार रहा है। इस चक्र का नाम है-यज्ञीय अथवा दैवी चक्र यह द्वितीय स्थिति ही "वैदिक समाजवाद" या विश्वप्रेम का क्रियात्मक स्वरूप है। इस त्याग में ही जीवन कला सन्निहित है।

आज समाजवाद और साम्यवाद की बड़ी व्यापक चर्चा है। वर्त्तमान रूसी साम्यवाद 'कम्यूनिज्म) और वैदिक साम्यवाद एक ही नहीं हैं। इनमें बड़ा अन्तर है। यहाँ हम अति संक्षेप में आज के युग के इस ज्वलन्त प्रश्न पर विचार करने लगे हैं। मित्रो और माताओ ! वैदिक धर्म या मानव धर्म की सबसे बड़ी शिक्षा ही यह है—ईश्वर एक है। वह सारे संसार के सब प्राणियों का पिता है। हम सभी मनुष्य और मनुष्येतर जीवधारी भी उस एक पिता की सन्तान होने से भाई-भाई हैं। वेदमाता की व्यवस्था है 'अज्येष्ठासो अकनिष्ठासः एते संभ्रातरो वावृधुः" न कोई बड़ा है, न छोटा है। सब भाई-भाई हैं और सब समान हैं। कर्म करने में स्वतन्त्र होने से उनके चिन्तन करने और कर्म करने में भिन्नता है। कर्म की यह भिन्नता, कर्म फल की भिन्नता या विषमता को जन्म देती है। एक ही माता-पिता की दो सन्तानें भी समान कहाँ होती हैं? शारीरिक गठन, बल, विद्या, बुद्धि सभी में विषमता होती है।

CamScanner से स्कैन किया गया

कर्मफल-जन्य यह विषमता स्वाभाविक है, सहज है। पर यदि हम, 'प्रति प्रतीचीर्दहताद् अरातिः' एक दूसरे के प्रति अदानता—अनुदारता या संकीर्णता त्याग दें—तो यह विषमता भगवान् की सृष्टि का अभिशाप न रहकर वरदान बन जाये। विषमता की इस स्थिति में ही तो मानव को देव बनाने वाली दया, दान, प्रेम, करुणा और परोपकार वृत्ति या यज्ञ-भावना जन्म लेती है। 'केवलाघो भवति 'केवलादी' अकेलाही खाने वाला पापी है, समाज का शत्रु है। वह अनार्य है, दस्यु है। उसे आर्य बनाकर यज्ञ-भावना से दीक्षित करो। हम में से प्रत्येक सच्चा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र बनकर अपने जीवन (अपनी सम्पूर्ण क्षमताओं—ज्ञान, बल, अर्थ और सेवा शक्ति) का ही स्वेच्छया समाजीकरण या राष्ट्रीयकरण कर दे-अपने जीवन को यज्ञमय बनाले, यह है जीवन जीने की सच्ची कला।

पर हाय रे दुर्भाग्य! मानव तो सत्य धर्म के रहस्य को न जानकर कर्मफल से उत्पन्न स्वाभाविक विषमता को घटाने के स्थान पर और बढ़ाता है और कई बार यह धर्म का नाम लेकर बढ़ाता है। एक मनुष्य के कुत्ते दूध से मुँह फेर लें और पड़ौसी का बालक दूध की एक-एक बूंद के लिए तरसे—तरसकर प्राण त्याग दे, यह इतनी बड़ी विषमता! किसी को भूखा मारने के लिए उत्पन्न करना ईश्वर की कर्म फल व्यवस्था का अंग नहीं, मानव की सामाजिक दुर्व्यवस्था का दुष्परिणाम है। और यह सर्वथा असह्य है। यह विषमता मिटनी ही चाहिए। इसके दो ही साधन हैं—

(१) एक वह जिसे कम्यूनिज्म प्रस्तुत करता है—मानव की हिंसा वृत्ति को, जन्म जन्मान्तर से दबे हुए पाशविक संस्कारों को उभारकर मारो, काटो, छीनो, झपटो की दुहाई देकर वर्ग-संघर्ष को उत्पन्न करके।

(२) दूसरा है वैदिक प्रकार—मनुष्य की सोई हुई सत्य धर्म वृत्ति या यज्ञ-भावना को जगाकर दया, दान, प्रेम, करुणा और मनुष्य क्या पशु-पक्षी तक में भी 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' की भावना जगाकर संसार को स्वर्ग बनाना।

CamScanner से स्कैन किया गया

कल-कल, छल-छल करती अपने प्रियतम सागर से मिलने के लिये अविराम बहती जा रही नदी को रोकने की व्यर्थ चेष्टा करते हुए पोखरे ने कहा—नदी, बहिन ! तुम बड़ी बावली हो। अपना सारा ऐश्वर्य यों ही लुटाये दे रही हो। मुझे देखो, मैं अपनी सारी जल-राशि को लिये अपने आप में सिमट कर बैठा हूं। नदी-कर्त्तव्य, निरत नदी बढ़ती जा रही थी और मानो गाती जा रही थी—

परोपकारार्थं वहन्ति नद्य, परोपकारार्थं दुहन्ति गाव:।
परोपकारार्थं फलन्ति वृक्षा: परोपकारार्थं मिदं शरीरम् ॥

पर इधर क्या हुआ ? पोखरे के चारों ओर खड़े वृक्षों के पत्ते पोखरे में गिरते थे। रुके हुए जल में वे सड़ने लगे। सड़ाँद से मच्छर पैदा हो गये। गाँव वासी मच्छरों से दुःखी हो गये। कारण का पता लगा कि एक परिग्रही, पोखरे ने हम सबको दुःखी बनाया है। बस फिर क्या था, गाँव वाले अपना २ कुदाल-फावड़ा लेकर जुट गये और देखते २ इस पूँजीवादी का अस्तित्व ही मिटा दिया। अपार जल-राशि को अपने अन्तराल में लिये जीवन द्वारा 'इदं न मम' का पाठ पढ़ाने वाली, वैदिक सम्यवाद की उपासक नदी अब भी अविराम उस यज्ञ-पुरुष का यशोगान गाती बहती जा रहा थी, जबकि अपने लिये ही जीने वाले पोखरे का अस्तित्व मिट चुका था। यही अन्तर है देव और दानव के बीच।

वैदिक साम्यवाद प्रेम, आत्मीयता, अद्रोह, अद्वेष और यज्ञ-भावना को जगाता है। हाँ, किसी भी अवस्था में उदारता एवं दानशीलता की वृत्ति न जगने पर ऐसे स्व-प्राण पोषक—असुर को वध करने का आदेश भी—"सत्यं ब्रवीमि वध इत्स तस्य" इन शब्दों में वेदमाता ने दिया है। पर समाज में व्याप्त विषमता को मिटाने का सहज साधन तो है—'प्रति प्रतीचीर्दहताद् अराति:' अदान वृत्ति या आसुरी वृति को दबाकर दैवी वृत्ति का मानव मनोभूमि में जागरण करना। यही है, 'देवी जागरण' की पुण्य प्रक्रिया।

CamScanner से स्कैन किया गया

सज्जनो ! वैदिक समाजवाद और रूसी साम्यवाद (कम्यूनिज्म) के अन्तर को हम थोड़ा और भी स्पष्ट करने का यत्न करेंगे हमने अपने कुछ मित्रों को दावत दी। उनमें से कुछ को ८ रोटी की भूख थी। कुछ को ३ की। पर हमने रूसी साम्यवाद के विचार से सभी को ६-६ रोटियाँ दीं। परिणाम में हमने देखा कि जिन्हें ४ राटी की भूख थी उनकी पत्तल पर दो-दो रोटियाँ जूठी बची रहीं और व्यर्थ गईं, जब कि जिनकी ८ रोटी की खुराक थी उन्हें दो रोटी की भूख रहगई। यहाँ बाहरी तौर पर समानता होते हुए भी आन्तरिक रूप से विषमता है, पर यदि हम उन्हें बराबर २ रोटियाँ न देकर उनकी आवश्यकतानुसार या खुराक के अनुसार देते हैं तो बाहरी तौर पर विषमता दीखने पर भी सभी को पूर्ण सन्तुष्टि के फल रूप में वास्तविक समानता होगी।

वैदिक साम्यवाद और कम्यूनिज्म के अन्तर पर और भी कुछ बिन्दुओं से विचार कीजिए।

(१) कम्यूनिस्टों का धर्म और ईश्वर से विरोध है, पर निश्चय ही यह धर्म और ईश्वर के सच्चे स्वरूप के अज्ञान के कारण है। आर कार्लमार्क्स अथवा कोई भी कम्यूनिस्ट जब किसी मजदूर की दयनीय दशा से द्रवित होता है तो उसके अन्तर में भी दया, प्रेम और करुणा का हो तो उदय हुआ। यही तो धर्मभावना या यज्ञभावना है। काश, कि कार्लमार्क्स इसी प्रेम और करुणा को जन-जन में जगा पाते तो इस धरती का मनुष्य चन्द्रमा का उड़ान लेकर भी सर्वनाश के कगार पर खड़ा न होता ! हाँ, विविध मत-पन्थों के बादलों ने सत्य-धर्म के सूर्य को ढक लिया है, उसका निराकरण अनिवार्य है। ऋषि दयानन्द ने यही किया। इस प्रकार ऋषि दयानन्द और महात्मा कार्ल मार्क्स की मूल भावना-सृष्टि के सभी प्राणियों का सुख एक होते हुए भी मार्ग सर्वथा भिन्न हैं।

(२) कम्यूनिज्म सिर्फ अर्थ और काम पर केन्द्रित है, वैदिक साम्यवाद अर्थ और काम को अन्य मत-पन्थों की भाँति हेय तो नहीं

CamScanner से स्कैन किया गया

मानता किन्तु उन्हें 'धर्म' से नियन्त्रित कर 'मोक्ष' का साधन बनाता है।

इसलिए 'धर्म-अर्थ—'काम-मोक्ष इस फल चतुष्टय में हम देखते हैं कि 'अर्थ-काम' बीच में हैं, मूल में धर्म है और अन्त में है 'मोक्ष'।

(३) कम्यूनिज्म का 'स्वर्ण-सिद्धान्त' (According to one's capacity according to one's need) धर्म भावना या कर्त्तव्य-बुद्धि के अभाव में कम से कम क्षमता (योग्यता) के उपयोग और अधिक-से अधिक आवश्यकताओं की वृद्धि के रूप में सर्वथा असफल हो चुका है, 'Need' 'Greed' में बदल गई है। 'यज्ञोपवीत-दीक्षा' द्वारा स्वेच्छया ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र के रूप में राष्ट्र को अधिक से अधिक क्षमता (Capaeiy का दान और कम से कम आवश्यकतायें रखना या 'सबकी उन्नति में अपनी उन्नति मानना' (आर्यसमाज का नवां नियम) ही उसका श्रेष्ठतम समाधान है।

(४) पूँजीवाद कहता है किसी को भी छेड़ो नहीं, कम्यूनिज्म कहता है किसी पर भी छोड़ो नहीं। (आर्यसमाज) का सातवाँ नियम वैदिक साम्यवाद कहता है—यथायोग्य व्यवहार करो। याज्ञिक को, आर्य को (सम्पत्ति और शक्तियों की राष्ट्रयज्ञ में हवि देने वाले को) नहीं, किन्तु असुर (अपने लिए ही जीने वाले पर क्षत्रिय के दण्ड का उपयोग कर छोड़ो नहीं। यह है वेदिक 'यथायोग्यवाद'।

(५) कम्यूनिज्म में व्यक्ति की स्वतन्त्रता का गला घोंट दिया गया है, पूंजीवाद (अमेरिका) में व्यक्ति को आत्यन्तिक स्वतन्त्रता है। वैदिक साम्यवाद में—'सामाजिक सर्वहितकारी नियमों में परतंत्रता तथा व्यक्तिगत हितकारी नियमों में स्वतन्त्रता (आर्यसमाज का १० वाँ नियम) का स्वर्णिम सिद्धान्त है।

एक व्यक्ति अपने पूर्ण पुरुषार्थ से विद्या, बल और धन को अर्जित करता है और 'इदं न मम' का पाठ करता हुआ उसे राष्ट्र देवता के अर्पित कर देता है यही है सच्चा राष्ट्रीयकरण या वैदिक साम्यवाद। यही है विश्वशान्ति या विश्व प्रेम का सुपरीक्षित सूत्र, जिसका मूलाधार है सच्ची आस्तिकता या सबका आदि मूल-परमेश्वर! (आर्यसमाज का प्रथम नियम)।

CamScanner से स्कैन किया गया

मित्रो और माताओ ! हम भूलें नहीं कि आस्तिकता का अर्थ कोरा पूजा-पाठ या केवल भौतिक यज्ञ-याग मात्र नहीं है। यज्ञ हमें सिखाता है बिना किसी बदले की भावना के दूसरों की भलाई करना, यजमान अपने पुरुषार्थ और श्रम से अर्जित घृत, शाकल्य और समिधा को यज्ञ में होमकर सुगन्धि, स्वास्थ्य, पवित्रता, सद्भाव, प्रेम और शान्ति सभी को बांटता है। उसका जीवन व्रत है—

पृथ्वी पर सुख शान्ति बढ़ाओ, देकर निज श्रम-शक्ति।
मानवता का अर्थ यही है और यही प्रभु-भक्ति॥

सच्चे आस्तिक की, प्रभु-भक्त की कामना है—

बरसूं जगत् में जलद सा, जीवन करूं सबका हरा।
फूलें फलें, हिल-मिल रहें, बन स्वर्ग जाये यह धरा॥
यह कामना पूरी करूं हे ईश यह वरदान दो।
जग को बना दूं मैं सुखी, ऐसा मुझे सद्ज्ञान दो॥

ईश्वर भक्ति के नाम पर आलस्य-प्रमाद क्लीवता-कायरता और अकर्मण्यता भगवद्-भक्ति नहीं है। जीवन के अन्तिम क्षण तक पूर्ण पुरुषार्थ और श्रम करते हुए कर्त्तव्यरत रहना और उससे प्राप्त ज्ञान, बल और धन से विश्व मानव, नहीं-नहीं प्राणि मात्र को, भगवान की सम्पूर्ण प्रजा को सुखी बनाना ही प्रभु-भक्ति है।

दो यात्री एक वाटिका (बगीचे) में प्रवेश करते हैं। बड़ी सुरम्य और मन को लुभाने वाली है, यह वाटिका। सुन्दर२ क्यारियाँ बनी हैं। तरह-तरह के पुष्प खिले हैं, भाँति २ के फलदार रसीले वृक्ष लगे हैं। यात्रियों में से एक यात्री बार-बार निरन्तर माली का यशोगान करता है और कहता है—'माली तुम बहुत अच्छे हो।' उधर दूसरा यात्री है। वह माली का यशोगान तो करता ही है पर साथ ही वाटिका की यदि कोई क्यारी फूट गई है—पानी निकलने लगा है तो फावड़ा लेकर उसे ठीक करने लगता है, कभी कोई अन्य कार्य करता है, कभी कोई दूसरी सेवा करता है। वह इतनी सुन्दर वाटिका के निर्माण के लिये माली का धन्यवाद भी

CamScanner से स्कैन किया गया

करता जाता है, पर साथ ही बराबर कर्त्तव्य-निरत है, माली की इस मनो म वाटिका को और भी मनोरम बनाने में संलग्न है।

पहला यात्री वाटिका में सैर करके बार-बार माली के पास आता और उसका संकीर्तन करता है। कहता है—'माली तुम बहुत अच्छे हो' पर यह क्या हुआ ? माली अपनी जगह से आगे बढ़ता है, उस कर्त्तव्य-निरत यात्री के पास पहुंचता है और बड़े प्यार से यात्री के कन्धे पर हाथ रखकर कहता है—

'यात्री तुम बहुत अच्छे हो, यात्री तुम बहुत अच्छे हो।'

आयें, हम प्रभु की विश्व वाटिका में ऐसा ही कर्त्तव्य-परायण यज्ञमयी जीवन जियें कि हमारा माली कह उठे—यात्री तुम बहुत अच्छे हो, यात्री तुम बहुत अच्छे हो। मित्रो और माताओ ! यही है जीवन कला और यही है 'सखेव सख्ये पितुरेव साधुः' उस पिता का वात्सल्य, उसका प्यार, उसकी सुमनस्कता प्राप्ति का साधन। उर्दू के एक मनीषी शायर ने कितने बड़े सत्य का उद्घाटन किया है—

खुदी को कर बुलन्द इतना कि हर तकदीर के पहले।
खुदा बन्दे से यह पूछे, बता तेरी रजा क्या है ?

क्या है प्रभु की मैत्री का साधनोपाय? एक ब्राह्मण विश्व प्रेम से प्रेरित हो अपने माथे को बार २ तपाकर, पसीना-पसीना होकर जब सर्वथा कर्त्तव्य बुद्धि से अपनी लेखनी और वाणी द्वारा समाज के अज्ञान से जूझता है तो वह योग-साधना ही करता है। एक क्षत्रिय प्राणों का मोह त्याग, अपनी प्यारी पत्नी औ प्यारे २ बच्चों के व्यामोह को भुला जब युद्ध क्षेत्र में प्रवेश करता है तो अपनी तलवार में प्रियतम प्रभु का दर्शन करता है, इसी प्रकार तुलाधार वैश्य की भाँति एक वैश्य अपनी तराजू में और एक शूद्र सर्वथा निष्काम भाव से अपने सेवा कार्य में ही प्रियतम प्रभु को बाँको झाँको करता है। ब्राह्मण-

CamScanner से स्कैन किया गया

क्षत्रिय-वैश्य और शूद्र में से प्रत्येक की दो-दो भुजायें—चारों की अष्ट भुजायें ही अष्टभुजी दुर्गा है। यह अष्टभुजी दुर्गा "धर्म क्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः" कर्त्तव्य क्षेत्र को ही धर्म क्षेत्र मानकर समाज के अज्ञान-अन्याय और अभाव रूप शत्रुओं को मिटाने के लिये युद्ध रत होती है' तभी देवी-दर्शन होता है, समाज में दिव्यताओं का सृजन होता है। वैदिक भक्त विश्व-प्रजा के एक-एक घटक के लिये अपने अन्तर में प्यार सँजोता है। ऐसा प्रभु भक्त विद्यालय के प्रांगण में प्रवेश करते समय अनुभव करेगा कि उसने भगवान् के मन्दिर में प्रवेश किया है। समाज के नन्हे-नन्हे जीवनों का निर्माण वह प्रभु प्रदत्त सेवा समझेगा। किसी आफिस में पहुंच कर फाइल पर कार्य करते हुए वह मानेगा कि वह यज्ञ कर रहा है, प्रभु-पूजन कर रहा है। उसके लिए उसका कार्य ही यज्ञ है, प्रभु-पूजा है। वह कह उठता है "जहँ-जहँ जाऊं सोई परिकरमा, जो कछु करौं सो पूजा।" हिन्दी के प्रसिद्ध कवि डा० रामकुमार वर्मा ने सच्चे प्रभु-भक्त के स्वरों में गुन-गुनाया था—

आज मेरी गति तुम्हारी आरती बन जाय।
श्वास ही मेरा विनय की भारती बन जाय॥

मेरी प्रत्येक गति, प्रत्येक कार्य-कलाप और यहाँ तक कि श्वास-प्रश्वास प्रभु-पूजा बन जाये। मित्रो और माताओ! प्रायः आपकी शिकायत होती है कि क्या करें भक्ति करने बैठते हैं सन्ध्या करने बैठते हैं, पर उसमें मन नहीं लगता और जिन सांसारिक काम-काजों में मन लगता है, वह प्रभु-भक्ति नहीं है। कैसी विचित्र विडम्बना है। वेदमाता इस उलझन को सुलझाती है। और प्रभु की भक्ति करने का, प्रभु का प्यार पाने का कितना सहज उपाय बताती है—पुरुद्रुहो हि क्षितयो जनानाम्, प्रति-प्रतीचीर्दहताति अरातिः' हम जो भी कार्य प्रभु की सृष्टि में करते हैं, उसी को पूजा बनालें यज्ञ बनालें। क्या ऐसा हो सकता है? हाँ, केवल दृष्टिकोण में थोड़ा अन्तर भर लाना होगा

CamScanner से स्कैन किया गया

कार्य वही होंगे, पर उनमें निजी लाभ की वृत्ति न रख—फल पर दृष्टि न होकर हम उन्हें प्रभु की प्रजा की सेवा की वृत्ति से करेंगे। किसी प्रकार की संकीर्णता हमारे कार्य-कलाप का आधार न होकर परिजनों, पुरजनों, राष्ट्रवासियों और धरती के सभी निवासियों के प्रति अपने अन्तर को लबालब प्रेम से भरकर ही, माँ बच्चे का पालन करेगी, पिता बालक का निर्माण करेगा, अध्यापक पढ़ायेगा, व्यापारी व्यवसाय करेगा किसान अन्न उत्पन्न करेगा, चिकित्सक चिकित्सा करेगा, सैनिक युद्ध क्षेत्र में जायेगा। इस प्रकार इस यज्ञ भावना से प्रभु का यह सुनहला संसार 'स्वर्ग' बन जायेगा।

विश्व प्रेम का यह पुण्य प्रवाह विश्व भर के मनुष्यों तक ही नहीं पशु-पक्षियों को भी निहाल कर रहा होगा। तब न कहीं मांसाहार रहेगा, न भगवान् की निरोह और मूक प्रजा की हत्या होगी। न कहीं भ्रष्टाचार-दुराचार-अनाचार, पापाचार, काला बाजार, चोरी, रिश्वत वस्तुओं में मिलावट धोखा-धड़ी, क्लीवता, कायरता होगी और न कहीं धर्म के नाम पर अधर्म पलेगा। सर्वत्र प्रेम-विश्वास-सद्भाव-आत्मीयता और सदाचार का पुण्य प्रवाह मानव के अन्तर्हृदय को शान्ति से भर यज्ञमय जीवन की सार्थकता बता रहा होगा-

यही कामना थी दयानन्द ऋषि की।
यही गूंज थी उसके प्रत्येक स्वर में॥

सामूहिक गीतिका

कमाले धर्म धन प्यारे सफर में काम आयेगा।
सकल सुख सम्पदा होगी बड़ा आनन्द पायेगा॥
बनेगी मृत्यु भी माता, प्रभू आदेश पर चलकर,
तू खिलते पुष्प की भाँति बदल चोले को जायेगा॥ कमाले०
मिले परलोक का सुन्दर, सजा वातावरण सारा,
है केवल धर्म जो दोनों ही लोकों को बनाएगा। कमाले०
ले सुन ले भोग कर आनन्द मुक्ति को जो लौटेगा,
विभूति तू बड़े धर्मात्मा घर की कहाएगा॥ कमाले०
बनेगा 'देश' का नेता आगामी अपने जीवन में।
चलेगी उस तरफ दुनियाँ जिधर को तू चलाएगा॥ कमाले०

CamScanner से स्कैन किया गया

ई वैदिक पुस्तकालय मुम्बई

सातवाँ दिन--

जीवन कला [६]

यज्ञमय जीवन का आदर्श—योगेश्वर कृष्ण

ओं प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु,
प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्रे उत आर्ये।।

सामूहिक गीतिका

मेरा उद्देश्य हो प्रभो ! आज्ञा को तेरी पालना
कर-कर कमाई धर्म की चरणों में तेरे डालना।

मानव के नाते ऐ प्रभो जाऊँ कहीं मैं भूल भी।
इतनी विनय है आपसे बनकर सखा संभालना॥
जितने भी यज्ञ कर्म हों सेवा व प्रेम से करूँ।
आयें अभद्र भाव जो उनको सदा ही टालना॥ मेरा०
रक्षा तो मेरी तू करे रक्षा में तेरी में रहूं।
अपने ही साँचे में प्रभो जीवन को मेरे ढालना॥ मेरा०
मृत्यु का मुझको भय न हो माँगता 'देश' वर यही
मेधा-बुद्धि की ऐ प्रभो झोली में भिक्षा डालना॥ मेरा०

माताओ और मित्रो ! आज हमारे वेद कथा सप्ताह का अन्तिम दिन है। पिछले छः दिन की कथाओं में हम निम्न बिन्दुओं पर विचार कर चुके हैं।

❀ वेद कथा सप्ताह की समाप्ति कृष्ण जन्मष्टमी के साथ होती है। अतः वेद मन्त्र द्वारा ही श्रीकृष्ण के पावन चरित पर यहाँ सक्षेपतः विचार किया है, विस्तृत जानकारी के लिए हमारे द्वारा विरचित 'शुद्ध कृष्णायन' पढ़ें।

CamScanner से स्कैन किया गया

(१) मनुष्य को कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य अथवा धर्म-अधर्म को जानने के लिए, ईश्वरीय ज्ञान की आवश्यकता है। वेद ही ईश्वरीय ज्ञान है। वेद माता है। वह जीवन ग्रन्थ है। माता की भाँति वेद माता भी हमें जीवन को धन्य और सफल बनाने की राह बताती है।

(२) पवित्र वेद की शिक्षाओं के अनुसार आचरण ही वैदिक धर्म है। यह वैदिक धर्म ही सत्य. सनातन है। धर्म एक है, मत-पन्थ मजहब अनेक हैं। पारसी मत, बौद्ध मत, ईसाई मत. इस्लाम मत, शैव मत, कबीर पन्थ, दादू पन्थ आदि ये सब अनेक मत-पन्थ हैं, धर्म एक है जैसे—सूर्य एक है, दीपक-लालटेन आदि अनेक हैं।

(३) मनुष्य जीवन एक अनमोल हीरा है, अमूल्य रत्न है। तीन अनादि सत्तायें हैं—ईश्वर, जीव और प्रकृति। प्रकृति को साधन बनाकर परमात्मा की अथवा शान्ति या आनन्द की प्राप्ति ही जीवात्मा का लक्ष्य है। यह मानव जीवन में ही सम्भव है, अन्य किसी योनि में नहीं।

(५) भगवान् अपनी कल्याणी वाणी वेद द्वारा अपने अमृत पुत्र मानव को उपदेश करते हैं—शान्ति या आनन्द पाना है तो यज्ञ करो, यज्ञशील बनो, जीवन को यज्ञमय बनाओ।

(५) हमारा जीवन पञ्चधा है, पाँच प्रकार का—व्यक्तिगत पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रिय और वैश्व जीवन! जीवन के इन विविध क्षेत्रों में यज्ञ-भावना को प्रतिष्ठित करना ही यज्ञमय जीवन है, ऐसा जीवन ही धन्य जीवन है।

(६) प्रतिदिन पञ्च महायज्ञों—ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, अतिथियज्ञ एवं भूतयज्ञ का श्रद्धापूर्वक सम्पादन कर ब्रह्मचर्य, गृहस्थ वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम व यज्ञ-भावना या त्याग भावना को विकसित करते हुए व्यक्ति व समाज के सामञ्जस्य द्वारा एक आदर्श ब्राह्मण, आदर्श क्षत्रिय, आदर्श वैश्य अथवा आदर्श शूद्र के रूप में स्वधर्म पालन ही यज्ञमय जीवन की व्याख्या है, यही जीवन कला है।

CamScanner से स्कैन किया गया

सज्जनो ! यहाँ एक प्रश्न उत्पन्न होता है कि यज्ञमय जीवन का यह आदर्श जो आश्रम धर्म और वर्ण धर्म अथवा वर्णाश्रम धर्म के परिपालन के रूप में वेद माता प्रस्तुत करती है, क्या केवल कहने या सुनने की बात है। कोई ऐसा पावन व्यक्तित्व भी है जिसने वेद की इन सद्-शिक्षाओं को जीवन में धारण कर यज्ञमय जीवन का आदर्श प्रस्तुत किया है। आज की कथा में हम इसी का विचार करेंगे।

भक्त प्रभु की कल्याणी वाणी वेद के शब्दों में विनय करता है—(प्रियं मा कृणु देवेषु) प्रभो ! मुझे ऐसा विद्या धन दो, मुझे ऐसा सत्यवीर, धर्मवीर बनाओ जिससे मैं देवों—विद्वानों का प्यारा बन सकूँ, विद्वानों के बीच मैं अपनी विद्या या ज्ञान की विशेषता से उनके निकट स्नेह, आदर और श्रद्धा का अधिकारी बन सकूँ। साथ ही (प्रियं राजसु मा कृष्णु) प्रभो ! मुझे ऐसा शौर्यधन दो, मुझे ऐसा शूरवीर बनाओ जिससे मैं क्षत्रियों के बीच भी सम्मान और प्यार अर्जित कर सकूं। प्रभो ! मेरी कामना है कि (उत आर्ये) मुझे ऐसा विभव और धन दो, ऐसा उदार चेता और दानवीर बनाओ। जिससे मैं वैश्यों के बीच भी आदर और स्नेह पा सकूँ, इतना ही नहीं प्रभो ! मुझे ऐसा कर्मवीर बनाओ, जिससे (उत शूद्रे) मैं श्रम-जीवियों के मध्य भी अपनी सेवा-साधना द्वारा प्यार पा सकूँ। इस प्रकार मेरे प्रभो ! (प्रियं सर्वस्य पश्यत) मुझे सबका प्यारा बना दो। मैं सभी के प्यार और श्रद्धा का पात्र बन सकूँ।

मित्रो और माताओ ! सामान्यतया एक मनुष्य में ज्ञान, बल, धन अथवा सेवा किसी एक ही प्रकार की विशेषता होती है—यही विशेषता या गुण कर्म स्वभाव वर्ण धर्म का आधार है। व्यक्ति की यह विशेषता ही, जब वह उसका उपयोग यज्ञ भावना या ईश्वरार्पित बुद्धि से करता है, उसका 'स्वधर्म' बन जाती है। पर वैदिक भक्त की कैसी कमनीय कामना है—वह ज्ञान, बल, धन, और

CamScanner से स्कैन किया गया

सेवा-साधना की सभी विशेषताओं को पूर्ण विकसित रूप में अपने जीवन में चाहता है। किसी एक विशेषता के आधार पर स्वधर्म का पालन करते हुए 'यज्ञमय जीवन' का आदर्श प्रस्तुत करने वाले महा-पुरुषों में से ब्राह्मण धर्म के अनुष्ठाता गौतम-कपिल, कणादादि ऋषि-महर्षि, क्षात्रधर्म के आदर्श मर्यादा पुरुषोत्तम राम, महाराणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी, वीर वन्दा वैरागी गुरु गोविन्दसिंह आदि, वैश्य धर्म के आदर्श वीर भामाशाह, वैश्य तुलाधार और सेवा धर्म के आदर्श— भक्त रैदास आदि से हमारा परिचय है। पर प्रश्न है कि क्या कोई महनीय सुपावन व्यक्तित्व है, जिसके जीवन में यह सभी विशेषतायें, ये सम्पूर्ण कलायें पूर्ण विकसित रूप में स्फुटित हुई हों। निश्चय ही देवकी नन्दन, यशोदा आनन्द वर्धन, नन्द-नन्दन वासुदेव कृष्ण— गीता गायक, चक्र सुदर्शनधारी, गोपालक योगेश्वर श्री कृष्ण के सुपा-वन चरित में यह पवित्र वेद मन्त्र मूर्त हो उठा है।

महर्षि सन्दीपन के शिष्य श्री कृष्ण वेद-वेदाङ्गों के महान् पण्डित थे। गीता में से यदि प्रक्षिप्त भाग निकाल दिया जावे तो शेष गीता वैदिक वाङ्मय का एक अद्वितीय ग्रन्थ है। ऐसा लगता है कि महात्मा कृष्ण योग स्थिति होकर पवित्र यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय के द्वितीय मन्त्र 'कुर्वन्नेह कर्माणि०' का विशद भाष्य कर रहे हों। वे उस मन्त्र के दृष्टा होने से 'ऋषि' संज्ञा के अधिकारी हैं।

युद्ध क्षेत्र में आकर अर्जुन को मोह ने आ घेरा। कृष्ण जानते थे अर्जुन क्षत्रिय है, वह क्षात्र धर्म के मर्म को जानता है, अन्याय का प्रतिकार उसका स्वभाव है। युद्ध के बिना यह रह नहीं सकता। यह व्यामोह क्षणिक है। यह वैराग्य वृत्ति सर्वथा झूठी और अकल्याण कर है। अर्जुन की इस पलायन वृत्ति के परिणामों का विचार कर श्रीकृष्ण का अन्तर सिहर उठा। कृष्ण जी ने कहा—

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम्।
अनार्य जुष्टमस्वर्ग्य मकीर्तिकरमर्जुन॥ (गीता २।२.

CamScanner से स्कैन किया गया

हे आर्य अर्जुन ! तुम्हें युद्धस्थल में यह मोह कैसे उत्पन्न हुआ ? यह तो अनार्यों का कर्म है। यह न स्वर्ग देने वाला है और न कीर्ति करने वाला है।

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्वयुपपद्यते।
क्षुद्रं हृदय दौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप ॥ (गीता २-३)

अर्जुन ! नपुंसकता मत दिखा। यह तुझे शोभा नहीं देता। हृदय की दुर्बलता त्याग और युद्ध कर।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥ (गीता २।२३)

अर्जुन ! आत्मा अमर है। शस्त्र इसे काट नहीं सकते। अग्नि इसे जला नहीं सकती, जल इसे गला नहीं सकता और वायु इसे सुखा नहीं सकता।

इस प्रकार उन्होंने अर्जुन को आत्मा की अमरता का उपदेश किया। वैदिक धर्म के सार सर्वस्व—वर्णाश्रम धर्म विहित क्षात्र धर्म का स्मरण कराया। सोई हुई कर्त्तव्य-बुद्धि को उद्‌बुध किया। कर्म-योग का रहस्य समझाया। उन्होंने अर्जुन को कहा—'ईश्वरार्पित बुद्धि से लोक संग्रहार्थ, विश्व-कल्याण की भावना से प्राप्त कर्त्तव्य का पालन स्वयं यज्ञ है। अन्यायी स्वयं अपने पापों से मरा हुआ है। तुझे तो निमित्त मात्र बनाना है—'निमित्त मात्रेण भव सव्यसाची' अर्जुन याद रख—

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गम्, जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
तस्मादुतिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृत निश्चय ॥ (गीता २।३७)

'यदि युद्ध में मर गया तो तुझे स्वर्ग मिलेगा और जीत गया तो पृथ्वी का राज्य। अतः युद्ध के लिए निश्चय कर और खड़ा हो।' अर्जुन जैसे सोते से जाग उठा। और कह उठा—

"करिष्ये वचनं तव,' यही है गीता सार।
कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविशेच्छतं समाः।

CamScanner से स्कैन किया गया

एवं त्वयि नान्य थेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ।। यजु०४०।२

यह पवित्र वेद मन्त्र ही गीता की आत्मा है। गीता मानो इस एक वेद मन्त्र की व्याख्या मात्र है। यज्ञार्थ, परोपकार्थ किये हुए कर्म बन्धन का कारण नहीं होते । जीवन के अन्तिम क्षण, अन्तिम पल तक वर्णाश्रम धर्म विहित कर्त्तव्य कर्मों में रत रहना ही बन्धन मुक्ति और प्रभु-प्राप्ति का एक मात्र उपाय है, अन्य नहीं। यही गीता सन्देश है। 'ब्रह्म सत्यं' जगन्मिथ्या' अथवा 'अहं ब्रह्मास्मि' की रट लगाकर संसार को झूठा बताकर कर्त्तव्य कर्म से विरत कर मनुष्य को आलसी, निकम्मा और भगोड़ा बनाने वाले स्वयं झूठे, नास्तिक और देशद्रोही हैं। यह गीता तत्व और उसकी मूल भावना, गीता का यह उपदेश श्रीकृष्ण के जीवन का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अङ्ग है।

श्रीकृष्ण महाराज राजनीति शास्त्र और धर्मशास्त्र के महान् पण्डित और व्याख्याता थे। श्रीकृष्ण की **नीतिमत्ता**—श्रीकृष्ण की बुद्धिमत्ता महाभारत के पृष्ठ-पृष्ठ पर अङ्कित है। नय-सागर कृष्ण ही अर्जुन की वास्तविक शक्ति हैं। अभिमन्यु वध से संक्षुब्ध हो अर्जुन सूर्यास्त से पूर्व ही जयद्रथ-वध करने या स्वयं अग्नि में जलने की प्रतिज्ञा कर बैठता है। युग कवि गुप्त जी के शब्दों में इस प्रसंग का एक चित्र देखिये—

अत्यन्त रोषावेश में तुमने किया है प्रण कड़ा।
अब यत्न क्या इसका सखे ! यह कार्य दुष्कर है बड़ा ।।
यों सुन वचन गोविन्द के निर्भय धनञ्जय ने कहा—
निश्चय मरेगा कल जयद्रथ प्राप्त होगी जय मुझे ।।
हे देव मेरे यत्न तुम हो मत दिखाओ भय मुझे।

(जयद्रथ वध)

और अन्त में कृष्ण के कौशल से ही जयद्रथ का वध हुआ।

× × ×

रथ का पहिया निकालते हुए जब कर्ण ने तीर तानते अर्जुन

CamScanner से स्कैन किया गया

को धर्म की दुहाई दी तो नीतिज्ञ कृष्ण, जो अभी अभी अर्जुन की भोली उदारता को देख चुके थे, बोले—

यद् द्रौपदीमेकवस्त्रां सभायामानाययेस्त्वं च सुयोधनश्च ।
दुःशासनः शकुनिः सौबलश्च न ते कर्णं प्रत्यभात्तत्र धर्मः ॥

(कर्ण० पर्व ६१।२)

ओ कर्ण ! जब तुम दुशासन, शकुनि और सौबल सब मिलकर ऋतुमती एक वस्त्रा द्रोपदी को घसीट लाये थे उस समय तुम्हें धर्म की याद नहीं आई। और—

यदाभिमन्युं बहवो युद्धे जघ्नुर्महारथाः ।
परिवार्य रणे बालं क्व ते धर्मस्तदा गतः ॥

(कर्ण० ६१।११)

जब तुम बहुत से महारथियों ने मिलकर अकेले अभिमन्यु को घेर कर मार डाला था उस समय तुम्हारा धर्म कहाँ गया था ? अरे क्षत्रिय धर्म को जानने का अभिमान करने वाले तुम भी तो उनमें सम्मिलित थे। इतना कहकर उन्होंने अर्जुन को आदेश दिया कर्ण का वध, करना धर्म है पुण्य है। यह है कृष्ण की राजनीति और धर्म-नीति का ज्वलन्त उदाहरण।

वेदोक्त धर्मतत्व के निर्देशक श्रीकृष्ण के अगाध पाण्डित्य के साथ ही उनकी शूरवीरता तो विश्व प्रसिद्ध है। श्रीकृष्ण का शिक्षा काल वृन्दावन के आसपास ही बीता होगा और वृषासुर, हयासुर, (पागल बैल तथा जङ्गली घोड़े) का वध उसी प्रान्त में किया गया होगा। गोवर्धन धारण की काव्यमयी घटना—जो गोवर्धन पर्वत पर गोपों की बस्ती बसाने और सप्ताह भर रात-दिन जागकर उसे बाढ़ में, बरसात में, मानो अपनी हथेली पर थामे रहने का कविता पूर्ण वृत्तान्त है—यहीं घटी होगी।

इसी काल श्रीकृष्ण ने नये रक्त में कंस शासन के विरोधी भाव कूट-कूटकर भर दिये थे। कंस ने जो भी गुप्तचर भेजे वह

CamScanner से स्कैन किया गया

ब्रजभूमि में ही सदा को सुला दिये गये। एक भी लौट कर कंस को अपनी रिपोर्ट न दे सका। यह मानो कंसराज को श्रीकृष्ण की चुनौती थी।

विवश होकर कंसराज ने दंगल के बहाने कृष्ण बल्देव को मथुरा बुलाया यह भी अपने मित्र मण्डल को लेकर अपने पालक पिता नन्द जी के साथ मथुरा पहुंचे। और जमुना तट पर राज-धोवी के वस्त्र लूट कर नगर पर अपना आतंक बैठा दिया। इनके मथुरा में पहुंचते ही कंस की वही दशा हो गई थी जो सूर्योदय पर अन्धकार की। इनका उभार हो रहा था, कंस दबता जाता था। आखिर दंगल में इनके साथी गोप बालकों ने कंस के बड़े बड़े पहलवानों को यम-लोक भेज दिया। और आकाश श्रीकृष्ग के जय-जयकार से गूँज उठा।

श्रीकृष्ण जी के समय में भारत के वनों में नाग, दानव आदि कुछ लुटेरे प्रजा पीड़क विदेशी छिपे रहते थे। भारत के राजा अपने भोग विलास और अभिमान में मग्न रहते थे। श्रीकृष्ण जो ने ऐसे दस्युओं को बीन-बीन कर चुन लिया। यमुना के टापू में कालिमा नाग रहता था उसे मार भगाया, और खाण्डव, वन जलाकर उसमें छिपे दस्युओं को गिरफ्तार किया जिनमें मयदानव एक अच्छा शिल्पी था, उसने इन्द्रप्रस्थ को अपने कला-कौशल से चमका दिया।

इस प्रकार अपनी आयु भर भगवान् श्रीकृष्ण ने भारतवर्ष की राजनैतिक सेवा की और अपने सामने ही एक न्याय प्रिय प्रजा हितैषी साम्राज्य बना दिया। खण्ड-खण्ड भारत को महा+भारत बनाना महावीर महात्मा कृष्ण का ही कार्य था। इस प्रकार वेद माता का यह सन्देश—

यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यञ्चौ चरतः सह।
तं लोकं पुण्य प्रज्ञेषं यत्र देवा सहाग्निना॥

—श्री कृष्ण जीवन में मूर्त हो उठा था। श्रीकृष्ण में देव तत्व (ब्राह्मत्व) और अग्नितत्व (क्षत्रियत्व) दोनों अपनी चरम सीमा को

CamScanner से स्कैन किया गया

पहुंचे हुए थे। इसीलिए तो राजसूय यज्ञ में सर्व प्रथम किसका पूजन हो, यह प्रश्न उपस्थित होने पर उस युग के एक अन्य महापुरुष—अखण्ड ब्रह्मचारी वयोवृद्ध भीषण पितामह प्रस्ताव करते हैं—

वेद-वेदांग विज्ञानं बलं चाप्यधिकं तथा।
नृणां लोकेहि कोऽन्यस्तु विशिष्टा केशवादृते ॥

अर्थात् (नृणां) आज के मनुष्य समाज में * (केशव) श्रीकृष्ण से अधिक कौन विशिष्ट—पूजा के योग्य हो सकता है, क्योंकि श्रीकृष्ण जहाँ वेद वेदांग और विज्ञान के आचार्य हैं, वहाँ बल और वीरता में भी सबसे आगे हैं।

माताओ और मित्रो ! मन्त्र के पूर्वार्द्ध प्रियं मा कृणु देवेषु, प्रियं राजसु मा कृणु,' के अनुसार श्रीकृष्ण के पावन चरित का संक्षिप्त चित्रण हम कर चुके हैं, अब आयें मन्त्र के उत्तरार्ध 'प्रियं सर्वस्व पश्यत उत शूद्रे उत आर्ये' का भी भगवान् कृष्ण के विराट् व्यक्तित्व में दर्शन करने का यत्न करें।

श्रीकृष्ण एक आदर्श वैश्य हैं। मनु महाराज ने लिखा है—'कृषि गोरक्ष वाणिज्यं वैश्य कर्म स्वभावजम्। श्रीकृष्ण की गोभक्ति प्रसिद्ध है। जैसे हमारे ऋषिराज का बहुत प्यारा नाम है—वेदों वाला ऋषि वैसे हमारे प्यारे कृष्ण का बहुत प्यारा नाम है-गोपाल कृष्ण। अहा ! कैसा वह समय था जब नौ लाख गायों के स्वामी को 'नन्द' कहा जाता था। १८ लाख गायें जिसके यहाँ होती थीं उसको 'महानन्द' और ८॥ लाख गायों के अधिष्ठाता के 'उपनन्द' उपाधि थी। श्री कृष्ण "नौ लख धेनु नन्द बाबा के" अनुसार नन्द ८ लाख गायों का पालन करने वाले थे, क्योंकि बाबा नन्द और यशोदा मैया की गोद में वे पले थे। गोप और गोपियों के बीच ही उनका सम्पूर्ण बचपन बीता। श्री कृष्ण को गायें बहुत प्रिय हैं गाय और गोपों की रक्षार्थ ही उन्होंने कालिया नाग का वध किया। एक बार ब्रज में जब अति वृष्टि हुई, जिसे काव्य की भाषा में कहा गया—'इन्द्र ने कोप

* यहाँ श्रीकृष्ण को भीष्म पितामह ने स्पष्ट ही मनुष्य कहा है।

CamScanner से स्कैन किया गया

किया' तो गोपों की कुटियाँ वह गईं। चारे के अभाव में गायें मरने लगीं। चारों ओर त्राहि २ मच उठी। श्रीकृष्ण आगे बढ़े। वे सब गायों को लेकर समीप के पर्वत खण्ड पर चढ़ गये। गोरक्षण और गोवर्धन का कार्य श्रीकृष्ण ने अत्यधिक तत्परता और तीव्रता से किया काव्य की भाषा में मानो पर्वत जैसे कार्य को अँगुली पर उठा लिया। कवियों के अलङ्कारिक वर्णन को न समझकर अन्धकार युग में लोगों ने महात्मा श्रीकृष्ण के जीवन के साथ चमत्कार जोड़ने का दुष्ट प्रयास करते हुए 'गोवर्धन पर्वत को अंगुली पर धारण करने' की कहानी घड़ डाली।

श्रीकृष्ण का अगाध गो प्रेम उनके इस वचन से प्रकट होता है—

गावो मे अग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः।
गावो मे हृदय सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम् ॥

अर्थात् गाय मेरे आगे हैं, गाय मेरे पीछे हैं, गाय मेरा हृदय हैं। मैं गायों के मध्य में ही निवास करता हूं मित्रो और माताओ! कैसे घोर कष्ट और घोरातिघोर दुर्भाग्य का विषय है कि हम प्रति-वर्ष कृष्णाष्टमी और गोपाष्टमी तो मना लेते हैं, पर हजार वर्ष से गाय के गले की छुरी स्वतन्त्र भारत के ० वर्षों में भी अलग नहीं हुई!

हाँ, तो हमने देखा वैश्य धर्म के अनुष्ठाता श्रीकृष्ण कैसे आदर्श गोपाल हैं। इतना ही नहीं श्रीकृष्ण की द्वारिका वैभव की नगरी थी। आज के बम्बई और कलकत्ता की भाँति उन दिनों 'द्वारिका' ही विदेशों से व्यापार का द्वार थी—इसीसे इसका नाम द्वारिका' था। श्रीकृष्ण इस अपार वैभव के स्वामी हैं, पर साथ ही 'मागृधःकस्य स्विद्धनम्' का रहस्य जानने वाले कृष्ण उतने ही उदार और विनय-शील हैं। सुदामा के प्रसंग में श्रीकृष्ण की मानवता, उनके मैत्री धर्म, उनकी उदारता और विनयशीलता का बड़ा ही हृदयग्राही चित्रण कविवर नरोत्तमदास ने 'सुदामा चरित' में किया है।

CamScanner से स्कैन किया गया

सुदामा ज्यों-त्यों करके द्वारिकापुरी में श्रीकृष्ण के महलों तक पहुंच गये हैं। द्वारपाल श्रीकृष्ण को समाचार देता है—

सीस पगा न झगा तन में प्रभु जाने को आहि बसे केहि ग्रामा।
धोती फटी सो लटी दुपटी अरु पाँय उपानहु की नहिं सामा॥
द्वार खड्यौ द्विज दुर्बल देखि रह्यो चकि सों वसुधा अभिरामा।
पूछत दीनदयाल को धाम, बतावत आपनो नाम सुदामा॥

सुदामा का नाम सुनते ही—

बोल्यो द्वारपाल 'सुदामा' नाम पाँडे सुनि,
छांड़े राज काज ऐसे जी की गति जाने को ?

× × ×

जैसी तुम कीन्हीं तैसी करे को कृपा के सिन्धु।
ऐसी प्रीति दीनबन्धु ! दीनन पै आने को॥

कृष्ण सुदामा को महलों में ले जाते हैं। और अपने मित्र की यह दशा देखकर वे विलख पड़ते हैं—

ऐसे विहाल विवाइन सों पग कंटक जाल लगे पुनि जोये।
हाय महादुःख पायौ सखा ! तुम आये इतै न कितै दिन खोये॥
देखि सुदामा की दीन दशा करुणा करिके करुणानिधि रोये।
पानी परात को हाथ छुओ नहिं नैनन के जल सों पग धोये॥

धन्य २ औदार्य शौर्य और शील का यह समन्वित आदर्श !

श्रीकृष्ण जहाँ एक आदर्श ब्राह्मण, आदर्श क्षत्रिय और आदर्श वैश्य हैं वहाँ वे शूद्र धर्म या सेवा धर्म के भी आदर्श प्रतीक हैं। राजसूय यज्ञ में जब कार्यों का बँटवारा हुआ तो श्रीकृष्ण कहते हैं—भाइयो, एक कार्य मैं करूंगा और वह अन्य किसी को करने दूंगा, नहीं। वह है—यज्ञ में समागत विद्वानों एवं सन्तों के चरण प्रक्षालन का कार्य। और यह सेवा श्रीकृष्ण ने ही की। अहा ! कैसी अनूठी सेवा-भावना है, श्रीकृष्ण में। इस प्रकार श्रीकृष्ण के समुज्ज्वल चरित में

CamScanner से स्कैन किया गया

ज्ञान, इल, धन और सेवा-साधना चारों ही विशेषतायें–सम्पूर्ण कलायें पूर्ण विकसित रूप में थीं। तभी न महर्षि दयानन्द ने अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में उन्हें 'आप्त पुरुष' कहा है।

गोपाल कृष्ण अपनी गायों की प्रसन्नता के लिये तो वंशीवादन या मुरली वादन करते ही थे, पर उनकी जीवन-वंशी के भी सात स्वर थे। जिस वेद मन्त्र से हमने अपनी इस साप्ताहिक कथा का आरम्भ किया था—'स्तुता मया वरदा वेद माता प्रचोदयन्ताम्' इस मन्त्र में बताया है कि परमेश प्रभु द्वारा प्रदत्त वेदमाता की शिक्षा के अनुसार आचरण करने वालों को ये सात वस्तुयें प्राप्त होती हैं, उनकी जीवन वंशी से इन सात विशेषताओं के स्वर फूटने लगते हैं। वे हैं—(१ आयुः, दीर्घ आयुष्य (२) प्राणं=प्राण शक्ति या अमित बल-वीर्य (३) प्रजां= उत्तम सन्तान (४) पशुं=गवादि पशुधन (५) कीर्ति=यश (६) द्रविणम्=धन—वैभव (७) ब्रह्मवर्चसम्=ईश्वर भक्ति या योग साधना से प्राप्त ब्रह्मतेज। आदर्श वेद भक्त, वैदिक महापुरुष श्रीकृष्ण में ये सभी विशेषतायें प्रचुर रूप में हैं। उनकी जीवन वंशी से निःसृत ये सात स्वर युगों से बहकर जन-जन को वैदिक-जीवन—यज्ञमय जीवन बनाने की प्रेरणा करते रहे हैं।

श्रीकृष्ण ने १२५ वर्ष की दीर्घ आयु प्राप्त की। आयु का औसत १०० वर्ष माना गया है उन्होंने उससे भी लम्बी आयु प्राप्त की। (२) उनकी प्राण शक्ति–बल वीर्य के सम्बन्ध में हम विचार कर चुके हैं (३) उन्होंने प्रद्युम्न के रूप में आदर्श सन्तान राष्ट्र को दी।

मित्रो और माताओ! प्रजा का अर्थ है—प्रकृष्ट, उत्कृष्ट श्रेष्ठ सन्तान। ऐसी सन्तान गृहस्थ जीवन में ही तप और संयम साधना से ही प्राप्त होती है। महाभारत कार महर्षि व्यास के शब्दों में—

ब्रह्मचर्यं महद् घोरं चोत्वा द्वादश वार्षिकम्।
हिमवत् पार्श्व मभ्येत यो यो मया तपसार्जित॥
समान व्रत चारिण्यां रुक्मिण्यां योऽन्वजायत।
सनत्कुमार स्तेजस्वी प्रद्युम्नो नाम मे सुतः॥

CamScanner से स्कैन किया गया

श्रीकृष्ण ने ऐसी दिव्य सन्तान पाने के लिये देवी रुक्मिणी सहित १२ वर्ष तक घोर तप किया। विवाह के आरम्भिक आकर्षण को जीतकर दोनों ने उस स्थान पर जिसे आप बद्रीनारायण कहते हैं, १२ वर्ष तक कठोर ब्रह्मचर्य का पालन किया। तब उन्होंने प्रद्युम्न नामक एक सन्तान प्राप्त की। कैसी मर्मस्पर्शी कष्ट की बात है ऐसे योगेश्वर को बीच के काल में हमारे ही लोगों ने भोगेश्वर बना दिया। कहा गया है कि श्रीकृष्ण के १६०१०८ रानियाँ थीं और उन्होंने एक २ से दस-दस सन्तानें उत्पन्न कीं। मानो श्रीकृष्ण को दिन रात सन्तान पैदा करने के अतिरिक्त कोई धन्धा ही नहीं था। हा, हन्त !

तो वेद भक्त श्रीकृष्ण ने सुप्रजा प्राप्त की (४) पशु=गवादि पशु-धन तो प्रचुर मात्रा में उनके पास था ही (५) कीर्ति=पाँचवीं विशेषता वैदिक पुरुष की है—यश। श्रीकृष्ण को अपने जीवन काल में ही प्रभूत यश मिला, राजसूय यज्ञ में सर्व प्रथम उनका पूजन हुआ, महाभारत के वे ही सूत्रधार थे। उनकी मृत्यु के पश्चात् भी यशः शरीर से वे अमर हैं। पाँच हजार वर्ष की लम्बी समय की प्रचीर को चीर कर उनका पवित्र नाम हमारे हृदयों में गूँजता है। (६) द्रविणं=द्वारिका जैसी स्वर्ण नगरी के सभापति होने से उनके पास प्रचुर धन-ऐश्वर्य भी था। (७) ब्रह्मवर्चसम्=इन सब विशेषताओं के साथ ही श्रीकृष्ण एक महान् योगी थे, ब्रह्म तेज से दीप्तिमान् थे। महाभारत में श्रीकृष्ण की प्रातश्चर्या पढ़ने से स्पष्ट है कि वे प्रातः ३ बजे जाग जाते थे। और प्रातः योगाभ्यास, प्रणव (ओङ्कार) जप एवं अग्निहोत्र आदि बड़ी निष्ठा से करते थे। सायंकाल भी वे इसी प्रकार सन्ध्योपासना, योगाभ्यास एवं अग्निहोत्र करते थे। अपने शान्ति प्रयत्न में हस्तिनापुर जाते हुए सायंकाल हो जाने पर वे—

अवतीर्य रथात् तूर्णं कृत्वा शौचं यथाविधिः।
रथ मोचन मादित्य सन्ध्यामुपविवेश ह॥ उद्योग० ३।२१

CamScanner से स्कैन किया गया

रथ से उतर कर यथाविधि शौचादि से निवृत्त हो वे यज्ञ एवं सन्ध्या करते हैं, पुनः रथारूढ़ हो आगे बढ़ते हैं। वहाँ पहुंच कर वे **'दुर्योधन की मेवा त्यागी साग विदुर घर खाये'** के अनुसार महात्मा विदुर का आतिथ्य स्वोकार करते हैं। विदुर जी के गृह से दुर्योधन के सभा भवन को प्रस्थान करने से पूर्व भी वे प्रातः सन्ध्योपासना एवं अग्निहोत्र करते हैं।

महान् प्रभु भक्त श्रीकृष्ण कितने निर्भीक हैं ? आतिथ्य के लिये दुर्योधन द्वारा आग्रह किये जाने पर वे कहते हैं—

सम्प्रीति भोज्यान्यन्नानि आपद्भोजानि वा पुनः।
न च सम्प्रीयसे राजन् न चैवापद्गता वयम्॥ उद्योग० ९१।२५

अर्थात् राजन् ! किसी के घर का अन्न दो कारणों से खाया जाता है—या तो प्रम के कारण या आपत्ति पड़ने पर। प्रीति तो तुम में नहीं है और संकट में हम नहीं हैं। श्रीकृष्ण निर्बल किन्तु धर्मात्मा युधिष्ठिर को सबल देते हैं और सम्बल किन्तु अधर्मात्मा दुर्योधन आदि कौरवों का सर्वात्मना विरोध करते हैं। महर्षि दयानन्द के अनुसार यही मनुष्यत्व का लक्षण है। ऐसी मानवता और ऐसी निर्भीकता श्रीकृष्ण जैसे ब्रह्म वर्चस्वो का ही भाग हो सकती है।

इतना ही नहीं मन्त्र के अन्तिम चरण 'मह्यं दत्वा व्रजत ब्रह्म लोकम्' के अनुसार वे इन सम्पूर्ण उपलब्धियों को सर्वथा निष्काम भाव से प्रभु की प्रजा के लिए समर्पित कर, लोक सेवा यज्ञ में हवि बनाकर यज्ञमय जीवन की फल-श्री ब्रह्मलोक=मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

ऐसे थे वैदिक जीवन-यज्ञमय जीवन के आदर्श युग पुरुष, लोक-नायक योगेश्वर श्रीकृष्ण। आयें, कृष्ण जन्माष्टमी के पावन पर्व पर इस पुण्यमयी वेदकथा के समापन कार्यक्रम में हम सभी यज्ञमय जीवन जोने का व्रत लें। यही जन्माष्टमी-व्रत होगा। महापुरुषों की जयन्तियाँ मनाने का यही महत्व है।

CamScanner से स्कैन किया गया

गीता में स्वयं महाराज कृष्ण कहते हैं—

यद्यदाचरति श्रेष्ठः तत्तत् देवेतरो जनः ।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनु वर्तते ॥

हे अर्जुन ! श्रेष्ठजन जैसा आचरण करते हैं,साधारणजन उसी का अनुसरण करते हैं। (अतः मैं सदैव सजग रहता हूं कि कहीं मेरा उदाहरण लेकर जन साधारण किसी पतन की दिशा को न अपना लें) पर कैसे कष्ट की बात है कि हमने अपने इन राम-कृष्णादि महापुरुषों को ईश्वर बनाकर जहाँ उनके साथ घोर अन्याय किया, उनके चरित्र और उपलब्धियों को हत्या की, वहाँ राष्ट्रिय पतन के मार्ग खोल लिये। श्री राम कृष्णादि की विशेषताओं से हम यह कहकर लाभ नहीं लेपाते कि वे तो परमात्मा थे, वैसे कार्य हम साधारण जन कहाँ कर सकते हैं ? दूसरी ओर हमने श्रीकृष्ण के पवित्र चरित्र के साथ दानलीला, मानलीला, रासलीला, चीरहरणलीला, कुब्जालीला आदि घोर घृणित प्रसंग जोड़कर उस योगेश्वर को भोगेश्वर बनाकर और यह कहकर कि जब भगवान् ऐसा करते थे तो हमारे करने में क्या दोष है, घोर पतन का मार्ग अपना लिया। पर अब देव दयानन्द की अपार दया से विचारशील सज्जन सत्य को अपना रहे हैं—

ऋषिराज ! तेज तेरा चहुं ओर छा रहा है ।
तेरे बताये पथ पर संसार आ रहा है ॥

कवि की यह वाणी सार्थक हो रही है। ऋषि दयानन्द का जादू अपना काम कर रहा है। कुरान, पुराण, बाइविल सभी को बुद्धि-संगत व्याख्यायें करने का यत्न किया जा रहा है।

अपने पूर्व रचित ग्रन्थों में श्री 'हरिऔध' जी ने जहाँ राधा और कृष्ण के उसी पुराणाश्रित रास-विलास और प्रेम प्रहसनों का चित्रण किया है साथ हो उन्हें अलौकिक और अवतार भी माना है, वहाँ 'प्रिय प्रवास' में श्रीकृष्ण और राधा को उन्होंने एक आदर्श लोक-सेविका के रूप में प्रस्तुत किया है। 'कृष्ण चरित्र' के प्रसिद्ध लेखक बङ्किम बाबू ने भी देव दयानन्द के दृष्टिकोण को स्वीकार किया है।

CamScanner से स्कैन किया गया

एक विचित्र भ्रान्ति जन सामान्य में पैदा की गई है कि आर्य-समाज राम और कृष्ण को नहीं मानता, उनका निन्दक है। आर्य-समाज ब्राह्मणों का शत्रु है, आर्यसमाज दान-पुण्य, पूजा, तीर्थ, व्रत आदि को नहीं मानता है। पर यह सब भ्रान्ति मात्र है। सच में आ० स० इनमें से प्रत्येक को मानता है किन्तु उसके सही रूप में—ऐसे रूप में जो हमारे, हमारे देश और समाज के लिए कल्याणकारी हो तथा जीवन के चरम लक्ष्य—प्रभु प्राप्ति में सहायक हो। हम भूलें नहीं कि आर्यसमाज कोई नया मत या मजहब नहीं है। ऋषि दयानन्द ने कोई नई बात हमें नहीं बताई। जो कुछ कुसमय के फेर में हम भूल चुके थे, उस भूले हुए को उन्होंने याद कराया।

श्रीकृष्ण का ही विषय आपके समक्ष प्रस्तुत है। दोनों तस्वीरें आपके सामने हैं। आप स्वयं देख रहे हैं कि आर्यसमाज उन्हें सदाचारी और संयमी मानता है जबकि अन्य लोग दुराचारी और लम्पट मानते हैं।

आयें, हम इस पाप से बचें। श्रीकृष्ण के चित्र की नहीं चरित्र की पूजा करें। साथ ही युगों के पश्चात् जिस देवता ने श्रीकृष्ण के पवित्र चरित्र पर छाये अवतारवाद, चमत्कारवाद और अलङ्कारवाद के परदों को हटाकर उन्हें आप्त पुरुष बताया, हम उस ऋषिराज दयानन्द और आर्यसमाज के प्रति कृतज्ञता प्रकट करें। आयें हम श्रीकृष्ण के इस पौराणिक स्वरूप–'ठुमुकि चलत श्रीकृष्णचन्द्र बाजत पैंजनियाँ' को हटाकर 'धमक चलत कृष्णचन्द्र हालत सब दुनियाँ' वाले उनके यज्ञमय आदर्श महामानव के स्वरूप को स्वीकारें, तभी मेरा भारत फिर से गौरवशाली भारत बनेगा। तभी जन-जन का जीवन यज्ञमय होकर, एक-एक परिवार में वेद की पावन ऋचायें गूँजेंगी। यज्ञ धूम से हमारे परिवार मण्डित होंगे। और देव दयानन्द तथा आर्यसमाज के साथ ही हमारे राष्ट्रिय कवि गुप्त जी का यह स्वप्न पूरा हो सकेगा–

मानस भवन में आर्यजन जिसकी उतारें आरती।
भगवान् फिर संसार में गूँजे हमारी भारती॥ शमित्योम्

CamScanner से स्कैन किया गया